हिन्दू अर्थ-चिन्तन

डॉ. बजरंगलाल गुप्त

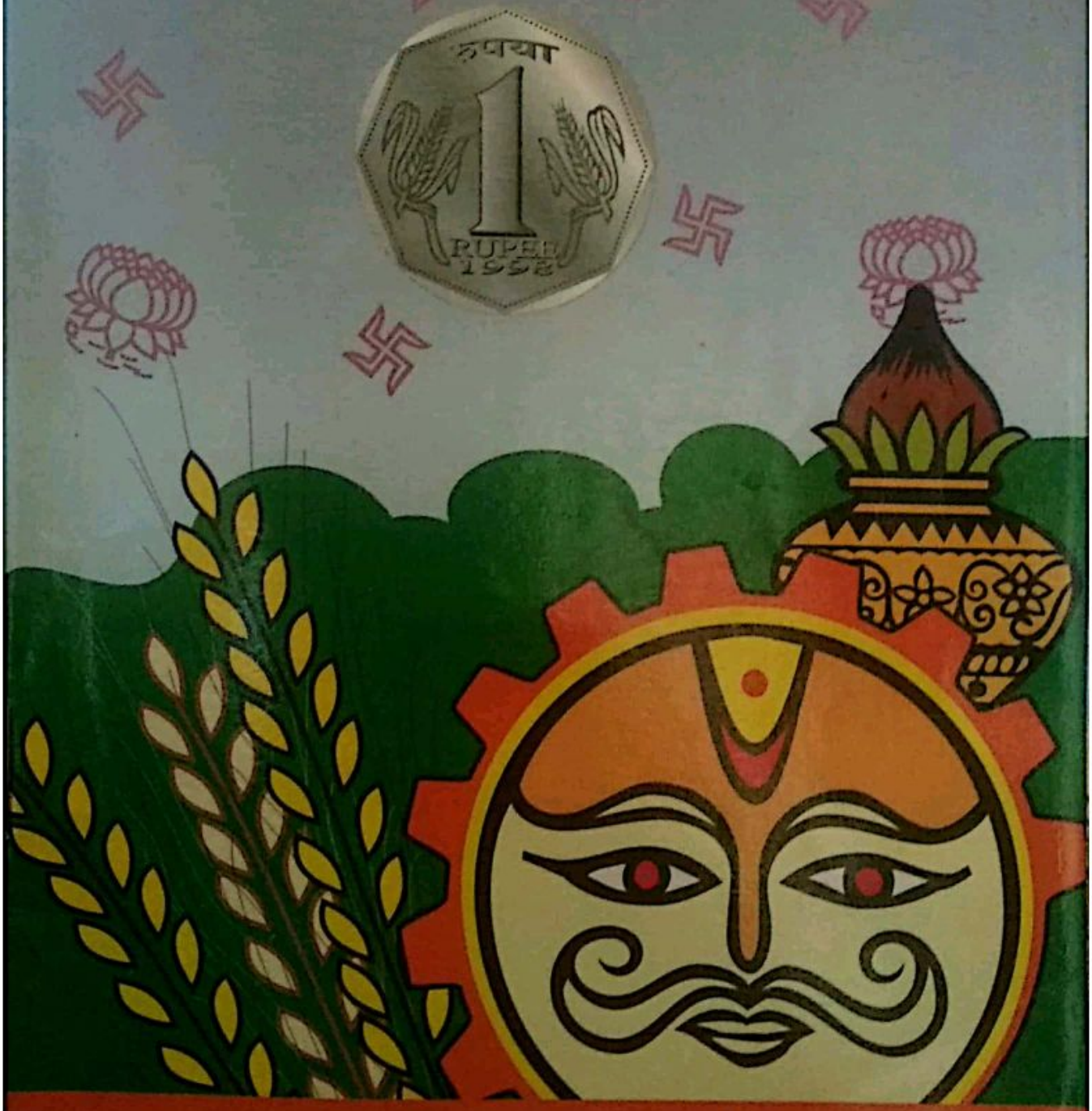

भारतीय विचार साधना, नागपुर

Scanned with CamScanner

Scanned by CamScanner

E – समिधा

॥ स्वाध्यायन्मा प्रमदः ॥

स्वाध्याय में प्रमाद निषेध

ये PDF Telegram से डाउनलोड की गयी हैं।

Telegram पर E-समिधा(Books) चैनल जॉइन कर के अन्य पुस्तको की PDF प्राप्त कर सकते हैं।

E-समिधा
Telegram

Scanned with CamScanner

Scanned by CamScanner

हिन्दू अर्थ-चिन्तन

(Hindu Economic Thinking)

डा. बजरंगलाल गुप्ता

सोनीपत, हरियाणा

भारतीय विचार साधना, नागपुर

Scanned with CamScanner

Scanned by CamScanner

प्रकाशक
भारतीय विचार साधना
डॉ. हेडगेवार भवन, महल,
नागपुर - ४४० ००२

✧

प्रथम आवृत्ति, युगाब्द ५१००
मार्गशीर्ष कृ. ९, शके १९२०
द्वितीय आवृत्ति फरवरी २००३

✧

मूल्य रु. २०/-

✧

मुद्रक :
सूरज प्रिन्टर्स
गरोबा मैदान, नागपुर.

Scanned with CamScanner

Scanned by CamScanner

प्रकाशकीय

हमारे भारत-वर्ष में सदियों से एक संस्कृति-प्रवाह निरंतर चलते आ रहा है। यह हिन्दु संस्कृति का प्रवाह है। हिन्दु यह शब्द धर्म (Religion) वाचक नहीं अपितु संस्कृति वाचक है यह हम सभी जानते है। इसी हिन्दु संस्कृति का एक अंग है अर्थशास्त्र। अर्थशास्त्र के विषय में हमारे यहाँ जो भी चिन्तन होगा उसे स्वाभाविक रूपसे 'हिन्दु-अर्थ-चिन्तन कहा जायेगा। इस संस्कृति में जो अर्थशास्त्र विकसित हुआ इसे स्वाभाविकतया ''हिन्दू अर्थशास्त्र'' कहा जायेगा। यह कोई नयी बात नही है।

हमारे वेदों में, जो कि दुनिया के प्राचीनतम ग्रन्थ है, अर्थशास्त्र का चिन्तन हुआ है। चूंकि हमारी विचार पद्धति एकात्म विचार पद्धति है, यहाँ का अर्थ चिन्तन अपने आप में एक परिपूर्ण चिन्तन है। वेदों में तथा कई प्राचीन ग्रंथों में इस की प्रचुर मात्रा में चर्चा हमें देखने को मिलती है। प्राचीन ग्रंथों में आर्य चाणक्य का कौटिल्य अर्थशास्त्र' सबसे प्रसिद्ध ग्रंथ है और आज भी इसका अभ्यास होता है।

नागपुर के सुप्रसिद्ध अर्थविद् डॉ. म. गो. बोकरे द्वारा Hindu Economics यह पुस्तक लिखने पर हिन्दु-अर्थशास्त्र और हिन्दु-अर्थ-चिन्तन फिरसे चर्चा में आया है। इस विषय में रुचि रखनेवाले सज्जन स्वाभाविकतः ऐसी पुस्तकों

Scanned with CamScanner

Scanned by CamScanner

की मांग करते रहते है। १९९७ के (तृतीय वर्ष), संघ शिक्षा वर्ग नागपुर में ख्यातनाम अर्थविद् डॉ. बजरंगलाल गुप्ता के दो भाषण इसी विषय पर हुअे थे। उन्हीं भाषणोंके आधार से इस पुस्तक की रचना की गयी है। आशा है पाठक इसका स्वागत करेंगे।

डॉ. बजरंगलाल गुप्ता ने इस पुस्तक को प्रकाशित करने की अनुमति दी तथा पूर्ण सहकार्य किया। भारतीय विचार साधना उनके प्रति कृतज्ञ है। जिन महानुभावोंने इस पुस्तक प्रकाशन में सहकार्य किया उन सभी के हम आभारी है। हमारे पाठकों का हमेशा की तरह सहकार्य मिलेगा ऐसी आशा ही नहीं वरन् दृढ विश्वास है।

- प्रकाशक

Scanned with CamScanner

Scanned by CamScanner

ॐ

प्रथम भाग

हिन्दू अर्थ-चिन्तन के मूलाधार
(Fundamentals of Hindu Economic Thinking)

आज के विषय के साथ एक बड़ी कठिनाई है। विषय तकनीकी है, अतः न चाहते हुए भी थोड़ी बहुत मात्रा में तकनीकी शब्दावली का प्रयोग करना पड़ेगा। तकनीकी शब्दावली भी दोनों प्रकार की प्रयोग करनी पड़ेगी। आजकल के जमाने में जो अर्थशास्त्र एवं अर्थ-चिन्तन चल रहा है, जिसे पश्चिमी अर्थ-चिन्तन कहा जा सकता हैं, उसकी भी कुछ-ना-कुछ शब्दावली का प्रयोग करना पड़ेगा। तथा दूसरी ओर, चूँकि 'हिन्दू अर्थ-चिन्तन' - यह विषय लेना है, अतः अपने हिन्दू मनीषियों ने इस विषय पर विचार करते समय जिन Terms (शब्दावली) का उपयोग किया है, उस शब्दावली का उपयोग भी करना होगा। और इस शब्दावली का उपयोग करते समय संस्कृत भाषा का प्रयोग करना पड़ेगा। इन सब तकनीकी शब्दावलियों के बावजूद प्रयत्न तो यही करूँगा कि इस विषय को सरल से सरल ढंग से प्रस्तुत किया जाय। इस दृष्टि से एक और बात प्रारम्भ में ही स्पष्ट कर देना चाहता हूँ। हमारे मनीषियों ने किसी भी विषय को प्रस्तुत करते समय जिन शब्दों का प्रयोग किया है, जिस तकनीकी शब्दावली का प्रयोग किया है, वह तकनीकी शब्दावली बहुआयामी (Multidimentional) है। शब्द एक ही है, पर उस शब्द के कई अर्थ हैं, कई पहलू (aspects) हैं। इसलिए उस शब्द के ठीक अर्थ को समझने

Scanned with CamScanner

Scanned by CamScanner

के लिए उस शब्द का किस संदर्भ में, किस विषय के संदर्भ में, किस समस्या के संदर्भ में प्रयोग किया जा रहा है, उसको ध्यान में रखकर ही उस शब्द का ठीक-ठीक अर्थ समझना होगा। आज की इस वार्ता में पश्चिमी अर्थ-चिन्तन और हिन्दू अर्थ-चिन्तन जिन मूलभूत तत्त्वों पर आधारित है, उन तत्त्वों की साथ-साथ तुलना आपके सामने प्रस्तुत करने का प्रयत्न करूँगा।

अर्थशास्त्र की परिभाषा

प्रारम्भ यहाँ से करेंगे कि यह अर्थशास्त्र है क्या ? इस अर्थशास्त्र की परिभाषा देने का प्रयत्न पश्चिम के विद्वानों ने भी किया है, और हमारे शास्त्रों में भी अर्थशास्त्र की परिभाषा देने का प्रयत्न किया गया है। हमें समझना है कि ये दोनों प्रकार की परिभाषायें कैसी हैं। आजकल के आधुनिक अर्थशास्त्र में अर्थशास्त्र की मुख्य रूप से तीन प्रकार की परिभाषायें प्रचलित हैं। इन्हें Three set of definitions कह सकते हैं। पहले प्रकार की परिभाषा, जिसे आजकल के लोग अर्थशास्त्र का पिता (Father of Economics) कहते हैं, उस एडम स्मिथ द्वारा दी गई परिभाषा है। एडम स्मिथ ने १७७६ में एक किताब लिखी और उस किताब का उसने शीर्षक ही ऐसा रखा, जिसके द्वारा यह बताने का प्रयत्न किया गया कि यह शास्त्र किन बातों का वर्णन करने वाला शास्त्र है। किताब का शीर्षक ऐसा है - "An Enquiry into the Nature and Causes of Wealth of Nations"। इस शीर्षक के माध्यम से ही उन्होंने बता दिया कि यह किताब जो मैंने लिखी है उसमें राष्ट्रों की सम्पत्ति की प्रकृति एवं कारणों की जाँच की गई है। इसके आधार पर अर्थशास्त्र से उसका क्या मंतव्य है, यह समझाने का प्रयत्न किया गया है। इस पुस्तक के आने के बाद एडम स्मिथ के उस समय के जो साथी अर्थशास्त्री थे या उसके अनुयायी थे, उन सबने अपने-अपने शब्दों में अर्थशास्त्र की परिभाषा दी है। इन सबकी परिभाषाओं को हम 'धन सम्बन्धी परिभाषा' कहते हैं। एक वाक्य में कहना हो तो इन सबकी निगाहों में **'अर्थशास्त्र धन का विज्ञान'** है (Economics is a Science of Wealth)। इस प्रकार १८ वीं शताब्दी में सबसे पहले एडम स्मिथ और उसके अनुयायियों ने अर्थशास्त्र का ऐसा दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। यह दृष्टिकोण प्रस्तुत करने के बाद सम्पूर्ण समाज में एक विशेष प्रकार की दौड़

Scanned with CamScanner

Scanned by CamScanner

प्रारम्भ हो गई। क्या दौड़ प्रारम्भ हो गई ? ज्यादा से ज्यादा धन कमाने की दौड़ प्रारम्भ हो गई। और जब रास्ते का खयाल न किया जाय, तौर-तरीकों का खयाल न किया जाय, ज्यादा से ज्यादा धन बटोरना ही अर्थशास्त्र और अर्थशास्त्री का उद्देश्य हो जाय तो समाज में जो परेशानियाँ पैदा होती हैं, वे सभी परेशानियाँ पैदा हो गई। इसके कारण अर्थशास्त्र की आलोचना प्रारम्भ हो गई कि यह जो नया शास्त्र आया है वह अधम विज्ञान (Bastered Science) है, घृणित विज्ञान (Dismal Science) है। यह तो मात्र दाल-रोटी का विज्ञान है। इससे परेशानियाँ पैदा हो रही हैं। इसके परिणामस्वरुप समाज में बढ़ रही बुराइयों के लिए उस समय के समाज सुधारकों (जैसे कार्लाइल, रस्किन, विलियम मौरिस आदि) ने अर्थशास्त्र को ही दोषी ठहराना प्रारम्भ कर दिया।

इसके बाद एक दूसरा अर्थशास्त्री आगे आया जिसका नाम था प्रो. मार्शल । प्रो. मार्शल ने अपने ढ़ंग से अर्थशास्त्र को परिभाषित करने का प्रयत्न किया। उसकी परिभाषा को हम अर्थशास्त्र के क्षेत्र में 'भौतिक कल्याण की परिभाषा' (definition of material welfare) ऐसा कहते हैं। क्या परिभाषा दी है उन्होंने ? तो मार्शल ने अर्थशास्त्र को इन शब्दों में समझाया—

"Economics is the study of mankind in the ordinary business of life." इसका जो दूसरा वाक्य है, वह बड़ा महत्त्व का है। इसमें उसने कहा है - "It examines that part of individual and social action which is most closely connected with the attainment and with the use of material requisites of wellbeing." इसका हिन्दी रूपान्तर इस प्रकार है - "अर्थशास्त्र जीवन के साधारण व्यवसाय में मानव जाति का अध्ययन है। यह व्यक्तिगत व सामाजिक कार्यों के उस भाग की जाँच करता है जो कल्याण के भौतिक साधनों की प्राप्ति एवं उनके उपयोग से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है ।" सार-संक्षेप में उसने समझाया कि जो अर्थशास्त्र नाम का शास्त्र है वह किसका अध्ययन करता है ? वह इस बात की जाँच करता है, उन सामाजिक मानवीय व्यवहारों की जाँच करता है, जिनका घनिष्ठ रूप से सम्बन्ध होता है, किस बात से - कल्याण के भौतिक साधन प्राप्त करने और उनका प्रयोग करने से। कुल मिलाकरके यह परिभाषा कहाँ घूम गई ? इसके अनुसार अर्थशास्त्र भौतिक कल्याण के साधनों का शास्त्र है। अब ये भौतिक कल्याण के साधन

Scanned with CamScanner

Scanned by CamScanner

क्या है ? तो मार्शल का एक अनुयायी हो गया है प्रो. पीगू। उन्होंने समझाया कि मुद्रा के मापदण्ड से जिसे मापा जा सकता हो, उसे भौतिक कल्याण का साधन कहते हैं। इस प्रकार से मार्शल और उसके अनुयायी भी अर्थशास्त्र को एडम स्मिथ की तरह धन के इर्दगिर्द ही ले आये। इनके अनुसार तो मुद्रा से जिसको मापा जा सकता है वह हमारे काम की चीज है और जिसको मुद्रा से नहीं मापा जा सकता वह हमारे काम की चीज नहीं है ।

इस दृष्टिकोण के कारण आज तक हम अर्थशास्त्र के लोग बहुत से भ्रमों में फँसे हुए हैं। ऐसे बहुत से काम हैं जो मनुष्य के कल्याण के लिए आवश्यक हैं किन्तु बाजार में बिकने के लिए नहीं आते, इसलिए वे मुद्रा से नहीं मापे जाते । मार्शल व पीगू की परिभाषा के अनुसार ये सब काम अर्थशास्त्र के अध्ययन की सीमा से बाहर हो जाते हैं। एक ही क्रिया एक समय में जब वह मुद्रा के मापदण्ड से मापी जाती है तो वह अर्थशास्त्र की सीमा में शामिल हो जाती है, किन्तु वही क्रिया जब किसी दूसरे क्षेत्र में मुद्रा के मापदण्ड से मापी नहीं जाती तो वह अर्थशास्त्र की सीमा से बाहर हो जाती है ? कैसा अर्थशास्त्र है यह ? एक उदाहरण देता हूँ। हम लोग राष्ट्रीय आय की गणना करते हैं। हिन्दुस्तान की राष्ट्रीय आय क्या है ? मान लीजिए, किसी ने अपने घर में खाना बनाने के लिए और घर का काम-काज करने के लिए नौकरानी रखी हुई है। तो यह नौकरानी जो खाना बना रही है, घर का काम कर रही है, उसकी इन सेवाओं को मुद्रा के मापदण्ड से मापा जा सकता है। उसकी सेवाओं के बदले जब कोई तनख्वाह (वेतन) देते हैं, तो नौकरानी की ये क्रिया राष्ट्रीय आय की गणना में शामिल होती हैं। पर जब वही काम घर में माँ करती है, पत्नि के रूप में गृहिणी करती है, वही खाना बनाने की क्रिया, वही कपड़े धोने की क्रिया, वही गृह कार्य की क्रिया, क्योंकि उसे तनख्वाह नहीं देते यद्यपि क्रिया वही (activity same) है, वह राष्ट्रीय आय का हिस्सा नहीं बनती। तो राष्ट्रीय आय के इस प्रकार के माप (measurement) को सही कहेंगे क्या ? इस प्रकार से जब मार्शल की यह परिभाषा आ गयी तो लोगों ने इसपर भी ऐतराज करना शुरू कर दिया और कहा कि भौतिक कल्याण के मापदण्ड वाली यह परिभाषा भी गलत है, भ्रामक है।

इसके बाद अर्थशास्त्र में एक तीसरे प्रकार की परिभाषा चली। एक प्रो.

Scanned with CamScanner

Scanned by CamScanner

रॉबिन्स हो गये हैं, उन्होंने अर्थशास्त्र की सीमितता सम्बन्धी परिभाषा दी। रॉबिन्स के अनुसार अर्थशास्त्र क्या है ? तो उन्होंने कहा —

"Economics is the science which studies human behaviour as a relationship between ends and scarce means which have alternative uses."

क्या कहा उन्होंने - अर्थशास्त्र एक ऐसा विज्ञान है जो उन मानवीय व्यवहारों का अध्ययन करता है, जो अनन्त आवश्यकताओं और सीमित एवं वैकल्पिक प्रयोगों वाले सीमित साधनों के बीच सामंजस्य बिठाने का काम करता है। इसे समझाते हुए उन्होंने बताया कि मनुष्य की आवश्यकतायें अनन्त हैं, उन अनन्त आवश्यकताओं को पूरा करने वाले साधन सीमित हैं, और एक साधन जो होता है उसके अनेक प्रयोग हो सकते हैं। इस बात को हम एक उदाहरण से अधिक अच्छी तरह समझ सकते हैं - मानों मेरे जेब में ५ रु. है, तो उस ५ रु. से मैं रोटी ले सकता हूँ, ५ रु. में किताब भी खरीद सकता हूँ, ५ रु. की फाउंटेन पैन भी खरीद सकता हूँ और ५ रु. की नोट में सिनेमा भी देखने जा सकता हूँ। तो साधन एक ही है ५ रु. का नोट, पर प्रयोग अनेक हैं - इस प्रकार होते है वैकल्पिक प्रयोगों वाले साधन। इसी में से उन्होंने कहा कि मनुष्य के सामने चुनाव की समस्या होती है - अपने साधन को कौन सी आवश्यकता की पूर्ति में लगाया जाय - यह चुनाव का विज्ञान ही अर्थशास्त्र है। इसीलिए प्रो. रॉबिन्स ने कहा कि अर्थशास्त्र चयन का विज्ञान है। (It is a science of choice). परन्तु किस बात का चयन करवाना चाहते हैं ? कुल मिलाकर मनुष्य की भौतिक आवश्यकताओं को पूरा करने वाले साधनों से क्या क्या चीजें खरीदी जा सकती हैं, इसका चयन करवाना चाहते हैं। इस प्रकार घूम फिरकर वे भी वहीं आ गये जहाँ एडम स्मिथ, मार्शल और पीगू थे ।

ये तीन अर्थशास्त्र की प्रमुख परिभाषायें हैं जो पश्चिमी अर्थशास्त्र में - पश्चिमी अर्थ-चिन्तन में चलती हैं। पश्चिम के लोगों का ऐसा दावा है कि यह अर्थशास्त्र हमने ही प्रारम्भ किया। दुनिया में अन्य किसी ने हमसे पहले अर्थशास्त्र एवं अर्थ-चिंतन के बारे में विचार ही नहीं किया। परन्तु अपने यहाँ के मनीषियों ने तो बहुत पहले से ही इस सम्बन्ध में विचार करना प्रारम्भ कर दिया था और उन्होंने भी अर्थशास्त्र की परिभाषा दी है। कैसी परिभाषा दी है

Scanned with CamScanner

Scanned by CamScanner

उन्होंने ? तो अपने यहाँ कौटिल्य के अर्थशास्त्र में अर्थशास्त्र की जो परिभाषा मिलती है, वह इस प्रकार है - "मनुष्याणां वृत्तिरर्थः । मनुष्यवती भूमिरित्यर्थः । तस्याः पृथिव्या लाभपालनोपायःशास्त्रमर्थशास्त्रमिति" (मनुष्यों की वृत्ति अर्थ है । मनुष्यों से युक्त भूमि अर्थ है । ऐसी पृथ्वी के प्राप्त करने, विकसित करने (या पालन-पोषण करने) के उपाय बताने वाला शास्त्र ही अर्थशास्त्र है ।)

अर्थशास्त्र की इतनी सटीक और स्पष्ट परिभाषा कौटिल्य से पहले दुनिया में अन्य किसी मनीषि ने आज तक नहीं दी । और कौटिल्य ने तो अर्थशास्त्र की यह परिभाषा देते समय स्पष्ट घोषणा की कि मनुष्य को जिन प्रमुख विद्याओं को सीखना चाहिए, उनमें से अर्थशास्त्र एक प्रमुख विद्या है । उसने बताया है कि - "आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिश्चेति विद्या ।" चार प्रमुख विद्यायें हैं - आन्वीक्षिकी (अर्थात् दर्शनशास्त्र), त्रयी (अर्थात् तीनों वेद), वार्ता - यह भारत के प्राचीन साहित्य में अर्थशास्त्र के लिए शब्द प्रयोग मिलता है, तथा दण्डनीति (अर्थात् लोक प्रशासन एवं राजनीतिशास्त्र) - ये प्रमुख रूप से चार विद्याये हैं । कौटिल्य के अनुसार यह अर्थशास्त्र क्या है ? तो उसने समझाया कि मनुष्यों की वृत्ति अर्थात् आजीविका अर्थ है । आगे उसने कहा कि मनुष्यों से युक्त भूमि अर्थ है - ऐसी भूमि को प्राप्त करने, उसके लालन-पालन-पोषण की विधि, सिद्धान्त और नियम जिस शास्त्र में बताये जाते हैं, उसे अर्थशास्त्र कहते हैं । उसके बाद अपने यहाँ एक और बड़े प्रसिद्ध अर्थशास्त्री हो गये हैं - शुक्राचार्य । इन्होंने एक प्रसिद्ध ग्रन्थ लिखा है - शुक्रनीति । शुक्राचार्य ने शुक्रनीति में तीन जगहों पर अर्थशास्त्र को परिभाषित करने का प्रयत्न किया है । यदि हम शुक्राचार्य की इन तीनों परिभाषाओं को मिला दें तो अर्थशास्त्र की एक पूर्ण परिभाषा (A complete definition of Economics) उभरती है । एक स्थान पर अर्थशास्त्र को समझाते हुए उन्होंने कहा— "अर्थानर्थौ तु वार्तायां" । अर्थ के उपार्जन और अनर्थ के निवारण के उपाय जिस शास्त्र में बताये जाते हैं, वह अर्थशास्त्र है । मुझे लगता है कि एक छोटे से सूत्रवाक्य के द्वारा अर्थशास्त्र को जितना बढ़िया ढंग से शुक्राचार्य ने समझा दिया है, वैसा आज तक दुनिया का कोई अन्य अर्थशास्त्री नहीं समझा सका है । पश्चिम के विद्वान अर्थ का अर्जन तो बताते हैं किन्तु अनर्थ का निवारण

Scanned with CamScanner

Scanned by CamScanner

नही बताते। जबकि शुक्राचार्य कहते है कि मेरी निगाह में अर्थशास्त्र वह है जो अर्थ के अर्जन और अनर्थ के निवारण दोनों के उपाय बताता है। फिर उन्होंने इस अर्थशास्त्र में क्या-क्या चीजें शामिल करनी चाहिए - इसे दूसरे श्लोक में बताया है —

''कुसीद कृषि वाणिज्यं गोरक्षा वार्त्तायोच्यते । सम्पन्नोवार्तया साधुर्नवृत्तेमर्यमृच्छति ॥'' ऋण पर ब्याज का लेन-देन, खेती, व्यापार और गोरक्षा (पशुपालन) — मुख्य रूप से ये चार विषय-वस्तु अर्थशास्त्र में शामिल होंगे। इन चार विषयों से सम्बन्धित व्यवहार को ही 'वार्त्ता' कहते हैं। जिस व्यक्ति को इस वार्ता शास्त्र का भली प्रकार ज्ञान है, उसे आजिविका का भय नहीं रहता और वह सुख से जीवन-यापन करता है। तीसरे श्लोक में शुक्राचार्य ने और भी महत्त्वपूर्ण बात कही है। अर्थशास्त्र को समझाते हुए उन्होंने कहा है —

''श्रुतिस्मृत्यविरोधेन राजवृत्तादिशासनम्। सुयुक्ताऽर्थार्जनं यत्रार्थशास्त्रं तदुच्यते ॥''

यहाँ श्रुति और स्मृति किसका प्रतिनिधित्व करती है ? तो यह धर्म मर्यादा, नैतिक मर्यादा आदि को बताती है। वे कहते हैं कि जिस शास्त्र में राजनैतिक - आर्थिक प्रशासन (Politico - Economic Administration) के बारे में श्रुति और स्मृति के अनुकूल अर्थात् नैतिक मर्यादाओं से युक्त सिद्धान्त बताये जाते हैं, उसे हम अर्थशास्त्र कहते हैं। इसके अलावा इसमें सुयुक्ताऽर्थार्जनं भी आया है। अर्थात् उन्होंने अर्थ का अर्जन युक्तिपूर्वक ही नहीं कहा बल्कि उसके लिए सुयुक्तिपूर्वक कहा। अच्छी युक्ति से, नैतिक तौर-तरीकों से अर्थ के अर्जन के उपाय जिस शास्त्र में बताये गये हों, उसे हम अर्थशास्त्र कहते हैं। तो ध्यान में आया होगा कि पश्चिमी चिन्तन की तुलना में भारतीय मनीषियों ने अर्थशास्त्र के सम्बन्ध में ज्यादा व्यापक, ज्यादा समग्र-समन्वित दृष्टिकोण उनसे बहुत पहले हमारे सामने रखने का प्रयत्न किया।

अब मैं कुछ मोटे-मोटे आधारभूत तत्त्वों को आपके सामने रखने का प्रयत्न करूँगा। सबसे पहले यह प्रश्न उपस्थित होता है कि हम अर्थशास्त्र में जब मनुष्य का अध्ययन करते हैं, तो कौनसे मनुष्य का अध्ययन करते हैं ?

Scanned with CamScanner

Scanned by CamScanner

अर्थात् मनुष्य के बारे में क्या कल्पना (Concept) है ? पश्चिमी अर्थशास्त्र ने जिस मनुष्य का अध्ययन किया है, उस मनुष्य को क्या माना है ? तो उन्होंने उसे 'आर्थिक मनुष्य' (Economic man) माना है। आजकल हम कॉलेजों में जो अर्थशास्त्र पढ़ते और पढ़ाते हैं, उसमें 'आर्थिक मनुष्य' की मान्यता एक प्रमुख मान्यता है - मूलभूत मान्यता है। पश्चिम के अर्थशास्त्रियों की निगाह में मनुष्य कैसा है, तो वह 'अर्थमानव' है। अर्थात् एक ऐसा मानव है जो आर्थिक कारकों से परिचालित होता है। मैं कोई काम करूँ कि न करूँ इसका किस आधार पर निर्णय करूँगा। तो जिसमें मुझे ज्यादा पैसे मिलेंगे, कर लूँगा और जिसमें पैसे नही मिलेंगे, नहीं करूँगा। मैं बाजार में जाता हूँ - कोई सामान खरीदूँ कि न खरीदूँ — किस आधार पर निर्णय करूँगा ? सस्ता मिलेगा तो खरीदूँगा और मँहगा मिलेगा तो नही खरीदूँगा। एक व्यापारी है— कोई सामान बेचे कि नही बेचे — किस आधार पर निर्णय करेगा ? जिससे ज्यादा पैसे मिले उसे बेचेगा और जिससे कम मिले उसे नही बेचेगा।

एक उत्पादक को निर्णय करना है कि किसी चीज का उत्पादन करे कि न करे ? जब वह पश्चिमी चिन्तन के आधार पर निर्णय करेगा, तो जिससे ज्यादा लाभ मिले उसका उत्पादन करेगा और जिससे कम लाभ मिले उसका उत्पादन नहीं करेगा, चाहे समाज के लिए हानि ही हो। कुल मिलाकर उन्होंने जिस मनुष्य का अध्ययन किया है, उस मनुष्य को किस निगाह से देखा है तो उसे 'अर्थ' की निगाह से देखा है और इसीलिए उनका मनुष्य 'आर्थिक मनुष्य' हो गया। और फिर उन्होंने इस आर्थिक मनुष्य को समझाने का प्रयत्न किया है कि यह क्या है ? तो उनके हिसाब से यह एक जैविकीय इकाई (Biological entity) है। यह एक भौतिक इकाई (Physical entity) है। यह एक हाड-मांस का बना हुआ पुतला है। इस हाड-मांस के पुतले की अनेक आवश्यकतायें हैं। इसकी अपनी जैविकीय आवश्यकतायें (Biological Needs) हैं। तो इन जैविकीय आवश्यकताओं को पूरा करने के तौर-तरीके बतानेवाला एक शास्त्र होना चाहिए, वही अर्थशास्त्र है। यह जो तौर-तरीके बतायेगा उससे हमें अधिकतम संतुष्टि मिलेगी। तो कुल मिलाकर पश्चिम के चिन्तकों ने मनुष्य को या तो आर्थिक मनुष्य के रूप में देखा या जैविकीय इकाई के रूप में देखा, यांत्रिक मानव के रूप में देखा, कुछ ने उसे 'वैज्ञानिक मानव' (Scientific

Scanned with CamScanner

Scanned by CamScanner

Man) यह नाम भी दिया, तो कुछ ने उसे 'सामाजिक पशु' (Social Animal) बताया। किन्तु भारतीय चिन्तकों ने कहा कि मनुष्य के बारे में ये सभी अवधारणायें अधूरी, एकांगी, अपर्याप्त एवं असंगत हैं। तो फिर उन्होंने मनुष्य को किस नाते से देखा ? उन्होंने सर्वव्यापक ब्रह्म के स्वरूप में एकात्म मानव (Integral man in the form of All pervading Brahma) की कल्पना की । यह है मनुष्य के बारे में हमारी मान्यता और अवधारणा। हमने कहा 'अहं ब्रह्माऽस्मि' - मैं तो साक्षात् ब्रह्म हूँ। आत्मा और परमात्मा में हमने कोई अन्तर नहीं माना - मैं ब्रह्म का ही अंश हूँ - इसीलिए तो तुलसीदासजीने कहा— ''ईश्वर अंश जीव अविनासी'' । इस मान्यता के आर्थिक दृष्टि से निहितार्थ (implications) हैं। यह जो मनुष्य है, यह केवल जैविकीय इकाई नहीं है, यह केवल मशीन नहीं है — यंत्र नहीं है। हमने कहा, यह तो सर्वांग मनुष्य है। शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा — इन चारों तत्त्वों का योग — यह मनुष्य है। इसलिए ऐसे किसी मनुष्य को सुखी बनानेवाले किसी शास्त्र का यदि हम अध्ययन करना चाहते हैं तो शरीर, मन, बुद्धि, आत्मा इन सबकी संतुष्टि जिससे हो सके, ऐसा अर्थशास्त्र विकसित करना पड़ेगा। इस प्रकार मनुष्य के सम्बन्ध में पश्चिमी चिन्तन और भारतीय चिन्तन की संकल्पना में बड़ा भारी अन्तर है।

दूसरा विषय उत्पन्न होता है कि इस सृष्टि को क्या माना ? सृष्टि, समाज और समस्यायें इसकी तरफ देखने का दृष्टिकोण क्या है ? तो पश्चिम के चिन्तन के बारे में हम जानते हैं कि उनका चिन्तन कार्टिजियन न्यूटोनियन दर्शन पर आधारित खण्डित यांत्रिक विश्वदृष्टि पर टिका हुआ है। उनकी खण्डित दृष्टि (fragmented approach) है। उन्होंने इस सम्पूर्ण चराचर को क्या माना ? तो उन्होंने इसे एक मशीन मान लिया। उन्होंने कहा कि इसके अलग-अलग टुकडें (Parts) हैं। इन अलग-अलग टुकड़ों का अध्ययन कर लीजिए, और फिर उनका योग कर दीजिए तो वह सृष्टि का अध्ययन हो जायेगा । जैसे मशीन चलती है, वैसे ही सृष्टि चलती है कुछ नियमों के आधार पर। तो ऐसी एक खण्डित यांत्रिक विश्वदृष्टि उन्होंने रखी। पश्चिमी चिन्तन के विपरीत भारतीय चिन्तकों ने प्रारम्भ से ही **'एकात्म सर्वंकष विश्वदृष्टि'** (Integrated-Holistic Worldview) को स्वीकार किया है। अब विज्ञान की

Scanned with CamScanner

Scanned by CamScanner

नवीनतम खोजों से भी यह सिद्ध हो चुका है कि ब्रह्माण्ड एक समग्र, एकात्म एवं सर्वंकष इकाई है। क्वांटम फिजिक्स भी अब यह मानने लगी है कि ब्रह्माण्ड के अलग-अलग दिखने वाले विभिन्न हिस्से एक-दूसरे के साथ गहरे और घनिष्ठ रूप से जुड़े और गुंथे हुए ही नहीं है बल्कि एक-दूसरे के भीतर अन्तर्भूत हैं। भारतीय मनीषियों ने तो प्रारम्भ से ही इस सत्य का दर्शन कर लिया था और इसीलिए उन्होंने कहा था कि 'यत्पिण्डे तत्ब्रह्माण्डे' अर्थात् जो एक अणु में है, वही ब्रह्माण्ड में है (That which is in microcosm is also in the macrocosm)। उनका विश्वास था कि सम्पूर्ण चराचर जगत में एक ही चेतन तत्त्व व्याप्त है - 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'। इसी आधार पर यह कहा गया कि व्यष्टि, समष्टि और सृष्टि ये अलग-अलग और स्वतंत्र इकाइयाँ नहीं हैं, अपितु एक ही तत्त्व भिन्न-भिन्न स्तरों पर अपने को प्रकट किये हुए है। अतः इनके बीच एक लय, एक ताल और एक रस बना रहना चाहिए। पश्चिमी चिन्तन की विश्वदृष्टि और भारतीय चिन्तन की विश्वदृष्टि से अर्थशास्त्र में क्या अन्तर आ गया ? यह विषय मैं लेना चाहता हूँ। तो पश्चिम के लोगों ने तो अलग-अलग टुकड़ों में बँटे हुए यंत्र के रूप में इस सम्पूर्ण सृष्टि और समस्याओं को देखा है। इसके कारण से अर्थशास्त्र में एक मान्यता चलती है - 'अन्य बातें समान रहने पर।' अर्थशास्त्र का हम जब भी कोई सिद्धान्त देते हैं तो उससे पहले एक महत्त्वपूर्ण मान्यता बताते हैं - 'अन्य बातें समान रहने पर' (*Ceteris peribus* or other things remaining the same) - अर्थात् अन्य बाते समान रहने पर, ऐसा होने पर ऐसा होगा - इस प्रकार सिद्धान्त देते हैं। उदाहरण देता हूँ, जैसे अर्थशास्त्र में हम माँग का नियम पढ़ते हैं। माँग का नियम क्या बताता है ? कम कीमत होने पर वस्तु की ज्यादा माँग और अधिक कीमत होने पर वस्तु की कम माँग — यह सिद्धान्त हैं — यह माँग का नियम (Law of demand) कहलाता है। पर इस माँग के नियम को देते समय हम क्या बोलते हैं - तो हम बोलते हैं कि यह नियम 'अन्य बातें समान रहने पर' ही लागू होगा । इस 'अन्य बातें समान रहने पर' वाली मान्यता का अर्थ है कि मनुष्य की इच्छा, आवश्यकता, रुचि, स्वभाव, फैशन, आय, देश की जनसंख्या, तकनीक व तकनोलॉजी आदि ये सब बातें स्थिर रहनी चाहिए। दुनियां का कोई देश या समाज आप ऐसा बता सकते हैं जिसमें ये सब बातें स्थिर रहती हैं।

Scanned with CamScanner

Scanned by CamScanner

नहीं रहती। यह अव्यावहारिक मान्यता है। सम्पूर्ण पश्चिम का अर्थचिन्तन आज जिस अव्यावहारिक मान्यता पर चल रहा है, वो यह 'अन्य बातें समान रहने पर' की मान्यता ही है। यह मान्यता किसमें से पैदा हुई, तो यह खण्डकरण यांत्रिक विश्वदृष्टि में से पैदा हुई। उनको समझ में ही नहीं आया कि यह विश्व क्या है - सृष्टि क्या है ? भारत के लोगों ने कहा कि पश्चिम की सारी मान्यतायें अव्यावहारिक है, अतः उनके सिद्धान्त भी अव्यावहारिक हैं। पश्चिम के अर्थशास्त्र की मानवीय व्यवहार के बारे में एक और महत्त्वपूर्ण मान्यता है और वह है 'आर्थिक विवेकशीलता की मान्यता' (The assumption of Economic Rationality)। उदाहरण के लिए, आधुनिक अर्थशास्त्र में यह माना जाता है कि एक उपभोक्ता हमेशा उस वस्तु का चुनाव करेगा जिससे उसे अधिकतम उपयोगिता मिलेगी और एक उत्पादक उस वस्तु का उत्पादन करेगा जिससे उसे अधिकतम लाभ मिलेगा। अर्थात् इसमें केवल आर्थिक कारकों को ही मानवीय व्यवहार को प्रभावित करनेवाले प्रमुख कारक माना जाता है। किन्तु वास्तविक संसार में यह मान्यता भी ठीक नही उतरती। अतः हमने कहा कि यह गलत मान्यता है। इसके स्थान पर भारतीय चिन्तन जिस महत्त्वपूर्ण मान्यता पर खड़ा है, वह है 'समग्र विवेकशीलता की मान्यता' (The assumption of integrated rationality)। अगर आपको अर्थशास्त्र और अर्थव्यवहार के क्षेत्र में कोई व्यावहारिक सिद्धान्त देना है, तो उसके लिए आपको तमाम तरह के पहलूओं पर एक साथ विचार करना पड़ेगा। कोई भी समस्या भला आर्थिक हो सकती है केवल ? क्या उसका समाजशास्त्र से कोई सम्बन्ध नहीं होता ? क्या धर्मशास्त्र व नीतिशास्त्र से कोई सम्बन्ध नहीं होता? क्या राजनीतिशास्त्र से कोई सम्बन्ध नहीं होता ? तो ध्यान में आयेगा कि इन सबसे सम्बन्ध होता है — उसका समाज में चलनेवाले प्रत्येक क्रियाकलाप से सम्बन्ध होता है। अतः एक साथ सब सम्बन्धों की व्याख्या करते हुए, तमाम तरह के सब कारकों का विचार करते हुए आपको कोई सिद्धान्त देना पड़ेगा। यह है हमारा दृष्टिकोण। पश्चिम के चिन्तन यानि उनकी खण्डित दृष्टि में से एक और खराबी पैदा हो गई। उनको यह समझ में ही नहीं आया कि यह व्यष्टि और समष्टि का सम्बन्ध क्या है ? और इसलिए आधुनिक अर्थशास्त्र में अर्थशास्त्र की दो शाखायें शुरू हो गई - अध्ययन के दो अलग-अलग

Scanned with CamScanner

Scanned by CamScanner

दृष्टिकोण शुरू हो गये — व्यष्टि अर्थशास्त्र (Micro-Economics) और समष्टि-अर्थशास्त्र (Macro-Economics)। जिस चिन्तन को लेकर आधुनिक अर्थशास्त्र चल रहा है, वह सारा चिन्तन ही मूलतः गलत (गड़बड़) है। शुरु-शुरु के जो पश्चिम के अर्थशास्त्री हुए, उन्होंने तमाम आर्थिक समस्याओं का अध्ययन व्यष्टिगत दृष्टिकोण (Micro Approach) से किया है। व्यष्टिगत दृष्टिकोण से अध्ययन करने का क्या मतलब है ? किसी भी एक व्यक्तिगत समस्या को ले लीजिए, उस व्यक्तिगत समस्या का अध्ययन कीजिए, उसका निष्कर्ष निकालिए, उस व्यक्तिगत समस्या के अध्ययन के आधार पर जो निष्कर्ष प्राप्त हुआ उसे समूची अर्थव्यवस्था अर्थात् समष्टिपर भी लागू कर दीजिए। उदाहरण के लिए जब हम चावल पकाते हैं, तो चावल के किसी एक दाने को देखते हैं और यदि यह पाते हैं कि वह दाना पक गया है तो उसके आधार पर निष्कर्ष निकाल लेते हैं कि समूचे चावल पक गये हैं। यही व्यष्टिगत दृष्टिकोण (Micro approach) है। किसी भी भाग (Part) का अध्ययन कीजिए और उस पार्ट के अध्ययन के आधार पर जो निष्कर्ष प्राप्त हो उसे सम्पूर्ण समष्टि पर लागू कर दीजिए। पश्चिमी दुनिया में कई सौ सालों तक इस व्यष्टिगत दृष्टिकोण के आधार पर ही आर्थिक समस्याओं का अध्ययन किया जाता रहा और आर्थिक सिद्धान्त व आर्थिक नीतियाँ बनाई जाती रही। पर १९२९-३२ के दौरान एक विश्वव्यापी महामंदी (The Great Depression) आयी। इस महामंदी के दौरान लोगों ने महसूस किया कि इस व्यष्टिगत दृष्टिकोण के आधार पर जो सिद्धान्त दिये गये थे, वे तो गलत हैं। ये तो लागू ही नहीं हो पा रहे हैं। इस परिस्थिति में लन्दन के प्रो. जे.एम. केन्ज ने एक नया दृष्टिकोण प्रस्तुत किया जिसे उन्होंने समष्टि-अर्थशास्त्र का नाम दिया। पर उन बेचारों को न व्यष्टि समझमें आती थी और न ही समष्टि समझ में आती थी। उनका समष्टि क्या था ? व्यष्टियों को जोड़ दीजिए और समष्टि बन गया। इसीलिए उन्होंने समष्टि अर्थशास्त्र को 'योगमूलक अर्थशास्त्र' (Aggregative Economics) नाम भी दे डाला। उदाहरण के लिए, यदि आपको राष्ट्रीय आय निकालनी है तो देश के प्रत्येक व्यक्ति की आय को जोड़ दीजिए। तो इस प्रकार उनकी दृष्टि में समष्टि अर्थशास्त्र क्या है ? वह है व्यष्टियों का जोड़। या तो अलग-अलग भागों का योग करके अथवा उस योग का औसत निकालकर हम

Scanned with CamScanner

Scanned by CamScanner

समष्टि-अर्थशास्त्र तक पहुँच सकते हैं। इसी में से औसत कीमत स्तर और औसत आय की अवधारणायें निकली। पर लोगों को आगे चलकर ध्यान में आया कि यह दृष्टिकोण भी गलत है। इससे भी समस्यायें न समझ में आ रही है और न ही सुलझ पा रही हैं बल्कि उलझ रही हैं। कैसे ? उदाहरण देकर सरल रूप में समझाता हूँ। कैसे गड़बड़ हो जाती है ? मान लीजिए, कोई व्यक्ति किसी शहर के रास्ते से गुजर रहा हैं। दिल्ली जैसे शहर में जा रहा हैं और दिल्ली में एक स्थान से दूसरे स्थानपर जाने के लिए डी.टी.सी. की बसें पकड़नी पड़ती हैं। बस में बड़ी भीड़ होती है। कोई व्यक्ति उस बस में जैसे चढने लगा तो उसे बस के पायदान के नीचे एक सौ रु. का नोट पड़ा हुआ दिखाई दिया । तो कोई भी जब सौ रु. का नोट देखेगा तो बस को जाने देगा और झट से सौ रु. का नोट उठा लेगा। उसने भी बस छोड़ दी और सौ रु. का नोट उठाकर अपनी जेब में डाल लिया। अब अर्थशास्त्र की गणना का मजाक देखिये। अर्थशास्त्र की गणना कहती है कि इस व्यक्ति की सौ रु. का नोट उठाने से पहले जो कुल सम्पत्ति रही होगी, उसमें अब सौ रु. का नोट उठा लेने के बाद सौ रु. की वृद्धि हो गई। मान लीजिए, पहले उसके पास ५,००० रु. थे तो अब उसकी कुल सम्पत्ति ५,१०० रु. हो गई। अब अर्थशास्त्री गणना करके बतायेगा कि चूँकि यह व्यक्ति हिन्दुस्तान का रहने वाला है और हिन्दुस्तान की कुल सम्पत्ति में प्रत्येक व्यक्ति की सम्पत्ति को शामिल करते है, अतः जब इस व्यक्ति की सम्पत्ति मे १०० रु. की वृद्धि हो गई तो हिन्दुस्तान की कुल सम्पत्ति में भी १०० रु. की वृद्धि हो गई। यहाँ एक व्यक्ति का अध्ययन करके उससे प्राप्त निष्कर्ष को समूची अर्थव्यवस्था पर लागू कर दिया गया है। क्या यह निष्कर्ष सही होगा ? गलत होगा। यह बात सामान्य बुद्धि का व्यक्ति भी कह सकता है। यहाँ एक भाग का अध्ययन किया, समष्टि का अध्ययन नहीं किया, इसलिए गलती हो गई। अरे, किसी न किसी की जेब से १०० रु. का नोट निकला होगा, वह ध्यान में ही नहीं आया। और उदाहरण देता हूँ। बैंक के साथ हम सब व्यवहार करते है। बैंक में हम पैसा जमा कराते है। बैंक में हम निश्चिंत होकर पैसा क्यों जमा करते है ? बैंक साख पर चलता है, विश्वास पर चलता है। बैंक वाले कहते है कि अच्छा आपने यह दो लाख रु. हमारे बैंक में जमा कराये हैं, चिन्ता की बात नहीं है, घर

Scanned with CamScanner

Scanned by CamScanner

जाकर चादर तानकर सो जाईये। आप जिस दिन भी चेक काटकर देंगे, हम तुरन्त पैसा वापिस दे देंगे। इस विश्वास के आधार पर बैंक चलता है। तो देखिये कैसा मजाक चल रहा है अर्थशास्त्र के क्षेत्र में। बैंक प्रत्येक व्यक्तिगत जमाकर्ता को यह गारण्टी देता है कि कोई भी व्यक्तिगत जमाकर्ता कभी भी अपना पैसा वापिस निकलवा सकता है। व्यक्ति के लिए यह गारण्टी शत प्रतिशत सही है। पर मान लीजिए, किसी बैंक के तमाम जमाकर्ता एक ही दिन तय करके एक ही समय तय करके, उस बैंक में जाकर अपना-अपना जमा कराया रुपया वापिस लेना चाहे तो बैंक चल सकता है क्या ? बैंक फेल हो जायेगा। जो बात व्यष्टि के लिए सच है, वह समष्टि के लिए सच नहीं है। यह विषय उन्हें ठीक से समझ में नहीं आया। कुल मिलाकर, आज जो अर्थशास्त्र के क्षेत्र में समस्यायें उलझ रही हैं, समस्यायें सुलझ नहीं पा रही हैं, उसका एक प्रमुख कारण यह जो व्यष्टि और समष्टि के सम्बन्ध की नाजुकता है, उसको ठीक से न समझ पाना ही है। पश्चिम के अर्थशास्त्री कभी व्यष्टि की ओर लपकते हैं तो पूँजीवाद पैदा हो जाता है, कभी बेचारे समष्टि की ओर लपकते हैं तो समाजवाद पैदा हो जाता है। इधर से धक्का खाते हैं, उधर जाते हैं और उधर से धक्का खाते हैं तो इधर आते हैं। तो हमारे कुछ लोग जो जरा ज्यादा बुद्धिमान हुए, उन्होंने कहा- दोनों को मिला दो, खिचड़ी बना दो - मिश्रित अर्थव्यवस्था (Mixed Economy) हो गई। ऐसे बनती है क्या खिचड़ी ? नहीं बनती। भारत के विचारकों ने कहा कि व्यष्टि और समष्टि के बीच एक तारतम्यता है। इस तारतम्यता को समझना पड़ेगा। हमने कहा - ''अहं ब्रह्मास्मि'' अर्थात् इस सम्पूर्ण चराचर का मैं हिस्सा हूँ। आगे हमने कहा - ''यत्पिण्डे तत्ब्रह्माण्डे। यत्ब्रह्माण्डे तत्पिण्डे ॥'' - यह जो सूत्रवाक्य है, यह अर्थशास्त्र के क्षेत्र में भी लागू होता है, जीवन के व्यवहार के क्षेत्र में लागू होता है। इसका अर्थ है कि व्यष्टि और समष्टि के बीच एकरूपता है, एकलयता है। भिन्न-भिन्न इकाइयाँ एक ही एकात्म में से निकली हुई इकाइयाँ हैं। इस सम्बन्धं और इसकी नाजुकता को समझकर ही हमें कोई व्यवस्थायें देनी पड़ेगी। ऐसी व्यवस्थायें ही ज्यादा सही और सटीक होती है, और ऐसी व्यवस्थायें हमारे चिन्तकों ने दी थी। कल की वार्ता में उदाहरण सहित उनको प्रस्तुत करूँगा।

Scanned with CamScanner

Scanned by CamScanner

तीसरी बात जो अर्थशास्त्र के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण है वह यह प्रश्न है, कि किसी भी अर्थव्यवस्था को चलाने वाला तंत्र क्या हो ? अर्थव्यवस्था का संचालन कौन करे ? (Who should operate the economy ?) तो अभी तक जो अर्थ-चिन्तन चल रहा है, उसके अनुसार कुछ लोगों ने कहा कि अर्थव्यवस्था को चलाने वाले तंत्र का नाम है - बाजार-तंत्र अथवा कीमत तंत्र (Market Mechanism or Price Mechanism) । एक अर्थव्यवस्था की जो केन्द्रीय समस्यायें (Central Problems) हैं, उनको कौन हल करता है ? उन समस्याओं में से उत्पन्न प्रश्नों का जवाब कहाँ से मिलेगा ? तो इस बारे में उन्होंने कहा कि यह काम बाजार-तंत्र करेगा। उदाहरण देता हूँ। क्या उत्पादन किया जाय? कहाँ से जवाब आयेगा ? सब वस्तुओं का उत्पादन नहीं किया जा सकता, क्योंकि साधन सीमित हैं। तो फिर किन वस्तुओं का उत्पादन करे — कौन तय करेगा ? तो पश्चिम के विद्वानों का जो एक वर्ग है, वह कहता है कि इसका निर्णय बाजार करेगा । बाजार में जिस वस्तु को खरीदने वाले ज्यादा होंगे अथवा जिस वस्तु को खरीदने वालों की जितनी ज्यादा ताकत होगी, उसी हिसाब से वस्तुओं का उत्पादन होगा। खरीदने की ताकत का फैसला इससे होता है कि किसकी जेब में कितना पैसा है। इस प्रकार किस वस्तु का उत्पादन करना है, इसका जवाब बाजार से मिलता है। वस्तुओं का उत्पादन कैसे हो (How is to be produced) - यह दूसरी समस्या है । कौनसी उत्पादन-तकनीक (Technique of Production) से उत्पादन हो ? श्रम-गहन तकनीक (labour - intensive technique) से उत्पादन हो कि पूँजी-गहन तकनीक (capital - intensive technique) से हो ? तो जो विधि सस्ते ढ़ंग से उत्पादन करवा दे, कम लागत में उत्पादन करवा दे - उससे होनी चाहिए । इस प्रकार उत्पादन की कौनसी विधि का प्रयोग हो, इसका कौन जवाब देता है ? बाजार जवाब देता है। कीमत-तंत्र जवाब देता है। किनके लिए उत्पादन किया जाय (For whom is to be produced) ? - यह तीसरी समस्या है। यह वितरण से सम्बन्धित मामला है। उत्पादन के किस साधन को राष्ट्रीय आय में से कितना हिस्सा मिलेगा ? श्रम की मजदूरी कैसे तय होगी ? भूमि का लगान कैसे तय होगा ? पूँजी का ब्याज कैसे तय होगा ? ये सब कौन तय करेगा ? तो जवाब आता है कि साधनो की माँग और पूर्ति के आधार पर बाजार तय

Scanned with CamScanner

Scanned by CamScanner

करेगा। बाजार में कीमत-तंत्र की सहायता से जब भिन्न-भिन्न साधनों की कीमत तय हो जायेगी, तो उसके आधार पर इन साधनों के स्वामियों को राष्ट्रीय आय में से मिलने वाला हिस्सा भी तय हो जायेगा। जिसको जितनी आय मिलेगी, उस वर्ग के लोगों के लिए उतनी ही मात्रा में वस्तुओं का उत्पादन भी होगा। तो कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि पूँजीवादी प्रणाली में अर्थव्यवस्था को चलाने वाली मशीनरी का नाम है -कीमत-तंत्र। पर इस कीमत-तंत्र ने अपने कार्य करने के तौर-तरीके से शोषण खड़ा कर दिया। अतः पश्चिम में विचारकों का एक दूसरा वर्ग पैदा हो गया और उसने कहा कि अर्थव्यवस्था को चलाने वाली मशीनरी का नाम है राज्य - इसी में से राज्य-नियंत्रित अर्थव्यवस्था के विचार को जन्म मिला और समाजवाद पैदा हो गया । राज्य बतायेगा- क्या उत्पादन हो, आप क्या खायेंगे - यह आप स्वयं तय नही कर सकते। राज्य बतायेगा, आप कैसा कपड़ा पहने आप तय नहीं करेंगे, राज्य तय करेगा। किस विधि से उत्पादन हो, किनके लिए उत्पादन हो - ये सब बातें राज्य ही तय करेगा। हमने देखा कि सोवियत रूस से प्रारम्भ होकर दुनिया के अनेक देशों ने राज्य-नियंत्रित अर्थव्यवस्था वाले इस समाजवाद को अपनाया था। किन्तु कुछ ही वर्षों बाद यह ध्यान में आया कि ऐसी सब अर्थव्यवस्थाओं में भ्रष्टाचार बढ़ गया और कार्य करने की पहल और प्रेरणा के कमजोर पड़ जाने के कारण उत्पादन घट गया।

भारतीय चिन्तकों ने कहा कि ये दोनों ही पद्धतियाँ गलत हैं। हमारे हिसाब से अर्थव्यवस्था को चलाने वाला तत्त्व धर्म है। अतः भारतीय चिन्तन ने धर्म-नियंत्रित अर्थरचना खड़ी की है। पश्चिम के अर्थचिन्तन ने जो अर्थशास्त्र का क्षेत्र बताया है, वह केवल अर्थ और काम तक ही सीमित रखा है। आधुनिक अर्थशास्त्र में अर्थशास्त्र की विषय वस्तु और क्षेत्र को समझाने के लिए आर्थिक चक्र (Economic Circle) की अवधारणा का प्रयोग किया जाता है। यह अवधारणा अर्थ और काम पर ही आधारित है। इसे हम इस प्रकार समझाते हैं - मनुष्य की आवश्यकतायें हैं - इस आवश्यकओं को पूरा करने के लिए वह प्रयत्न करता है - प्रयत्न करके धन कमाता है - धन से आवश्यकताओं की संतुष्टि करता है - फिर आवश्यकतायें पैदा हो जाती हैं - इस प्रकार यह चक्र चलता रहता है। इसी को आधुनिक अर्थशास्त्री कहते हैं

Scanned with CamScanner

Scanned by CamScanner

आर्थिक-चक्र और उनके अनुसार यही है अर्थशास्त्र की विषय-वस्तु। भारत के मनीषियों ने कहा कि यह चक्र अधूरा है। पूरा चक्र तो धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का बनता है। उनके अनुसार अर्थ और काम धर्म द्वारा नियंत्रित होना चाहिए। परन्तु जब हम लोग धर्म बोलते हैं तो लोग गलत अर्थ लगाते हैं। तो धर्म का सही अर्थ क्या है ? धर्म 'धृ' धातु से बना है। और आपको यह जानकर आश्चर्य होगा, कि 'धृ' धातु के जो तीन अर्थ हैं, वे तीनों अर्थशास्त्र से सम्बन्धित हैं। 'धृ' धातु के अर्थ हैं - धारण करना, पोषण करना और निर्वाह करना - ये तीनों अर्थशास्त्र के विषय हैं। धारण, पोषण और निर्वाह करने वाला जो कुछ भी होगा वह गुणधर्म है। तो स्वाभाविक रूप से आप कोई भी अर्थरचना करते समय धारण करना, पोषण करना -और निर्वाह करना इसकी व्यवस्था करेंगे। उसकी कोई न कोई नैतिक मर्यादायें बतायेंगे। ऐसी नैतिक मर्यादायें जिनसे समाज के लोगों का धारण, पोषण और निर्वाह चलता रहे, उन मर्यादाओं का नाम ही धर्म है। तो एक तरह से धर्म शब्द यहाँ नैतिक मर्यादाओं के संदर्भ में आया है। नीतिशास्त्र का अर्थ पर नियंत्रण रहना चाहिए - यह गाँधीजी ने बड़े स्पष्ट रूप से घोषणा की थी। इस सम्बन्ध में गाँधीजी का एक वाक्य बड़ा प्रसिद्ध है - "I must confess that I do not draw a sharp or any distinction between economics and ethics. Economics that hurts the moral wellbeing of an individual or a nation is immoral, and therefore sinful." इस प्रकार गाँधीजीने कहा कि मैं अर्थशास्त्र और नीतिशास्त्र के बीच कोई अन्तर नहीं करता हूँ, बल्कि जो अर्थशास्त्र नीतिशास्त्र की मर्यादाओं के विपरीत चलता है, वह अनैतिक है और इसलिए पापपूर्ण है। और यह बात केवल गाँधीजी ने बोली ऐसे थोड़ा ही है। गाँधीजी ने तो वही बोला है, जो हजारों वर्षों से भारतीय मनीषि कहते आये हैं। हमारे यहाँ याज्ञवल्क्य स्मृति एक बड़ी महत्त्वपूर्ण स्मृति है। इस याज्ञवल्क्य स्मृति में अर्थशास्त्र और धर्मशास्त्र के बीच जब विरोध पैदा हो जाये तो कैसा व्यवहार करना चाहिए - इसके बारे में निर्देश प्राप्त होता है। इसमें स्पष्ट रूप से कहा गया है कि - "**अर्थशास्त्रास्तु बलवद्धर्मशास्त्रमिति स्थितिः।**" अर्थशास्त्र की तुलना में धर्मशास्त्र ज्यादा महत्त्वपूर्ण है। यदि कभी इन दोनों में विरोध पैदा हो जाये तो आप धर्मशास्त्र का पालन कीजिए; क्योंकि समाज में उसी में से मर्यादायें बनेगी। जब कभी भी किसी भी समाज ने धर्मशास्त्र के निर्देशों का

Scanned with CamScanner

Scanned by CamScanner

पालन नहीं किया तो उस समाज को कष्ट भोगना पड़ा है। और उस कष्ट का वर्णन वेदव्यासजी ने किया हुआ है —

"ऊर्ध्वबाहुर्विरोम्येष न हि कश्चित् श्रुणोति माम् ।

धर्माद्ऽर्थश्चकामश्च स धर्मं किं न सेव्यते ॥"

उन्होंने कहा कि दोनों भुजायें उठाकर मैं घोषणा कर रहा हूँ कि अर्थ और काम का सेवन मनुष्य ने धर्म के अनुसार करना चाहिए। परन्तु आज के समय में कोई भी मेरी यह बात नहीं सुन रहा हैं, यही कष्ट का कारण है। इसीलिए दुःख हो रहा है - ऐसा उन्होंने वर्णन किया था अपने समय में। यह चेतावनी थी कि हम सबको व्यवहार धर्म के आधार पर करना चाहिए। पर इसका अर्थ ऐसा नहीं है कि हमें अर्थ और काम का विचार ही नहीं करना चाहिए। करना चाहिए - अवश्य करना चाहिए। वास्तव में तो हमको धर्म, अर्थ और काम का संतुलित विचार करना चाहिए। और इसीलिए मनु महाराज ने मनुस्मृति में स्पष्ट रूप से कहा है -

धर्मार्थकामाः समं एव सेव्यकाः ।

यः एक सेवी स नरो जघन्यः ॥

इतना स्पष्ट निर्देश कहीं नहीं मिल सकता। मनु महाराज कहते हैं कि मनुष्य को धर्म, अर्थ और काम इन तीनों का संतुलित रीति से सेवन करना चाहिए । जो केवल एक ही का सेवन करता है, वह जघन्य है, गलत करता हैं, पापी है । तो इस तरह से हमने धर्म-नियंत्रित अर्थरचना विकसित करने का प्रयत्न किया ।

अब मैं एक और संकल्पना की चर्चा करूँगा। कुल मिलाकर कोई भी आर्थिक सिद्धान्त, आर्थिक प्रणाली बनाते समय एक और बात पर विचार करना पड़ता है कि यह जो साधन-संपदा है, इस पर किसका अधिकार रहे ? (Who should be the owner of the means of production ?) - इसका जवाब देना पड़ता है। तो इस प्रश्न का अमेरिका जैसे पूँजीवादी देशों ने जवाब दिया और कहा कि उत्पादन के साधनों पर व्यक्तिगत स्वामित्व होना चाहिए (Individual Ownership over the means of production)। अर्थात् उत्पादन के साधनों का स्वामी कौन होता है ? व्यक्ति होता है। इस प्रकार व्यक्ति का

Scanned with CamScanner

Scanned by CamScanner

साधनों पर अधिकार होता है । इसके विपरीत रूस जैसी समाजवादी अर्थव्यवस्था के अर्थशास्त्रियों ने जवाब दिया कि साधनों पर राज्य का स्वामित्व (State Ownership) होना चाहिए । इसी को उन्होंने राष्ट्रीयीकरण (Nationalisation) का नाम दिया । उनके अनुसार देश के साधन राज्य के स्वामित्व में रहेंगे । इस दृष्टि से हमें भारतीय चिन्तन में एक नयी अवधारणा (Concept) मिलती है । मेरे विचार में उसको नाम दिया जा सकता है - ''ईश्वर स्वामित्व'' (God's Ownership over the means of production) । इसका अर्थ है कि उत्पादन के साधनों पर भगवान का स्वामित्व हैं, किसी व्यक्ति का नहीं, किसी सरकार का नहीं । हमारे पास जो स्वामित्व है, वह हस्तांतरित स्वामित्व (deligated ownership) है, मुख्य स्वामित्व हमारे पास नहीं है । यह एक नयी अवधारणा है, जो भारतीय चिन्तन में मिलती है । ईशोपनिषद् का एक प्रसिद्ध श्लोक है -

''ईशावास्यमिदं सर्वंयत्किंचंजगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुंजीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ॥''

इसी को आगे बढ़ाते हुए हमारे यहाँ कहा गया है कि 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'। अर्थात् जो कुछ इस संसार में हैं, चराचर में है, वह किसका है ? ब्रह्म का है, हमारा कुछ नहीं । 'सियाराम मय सब जग जानि' - यह जो तुलसीदास जी रामचरित मानस में कह गये हैं अथवा विनोबा जी ने जो यह कहा है कि - 'सबै भूमि गोपाल की या में अटक कहाँ, जा के मन में अटक है सो ही अटक रहा' - यह सम्पूर्ण चिन्तन किस बात की ओर संकेत करता है ? गाँधीजी का ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त क्या बताता है ? ये सब अन्तिम और वास्तविक स्वामित्व किसका हैं - इसी प्रश्न का उत्तर देने का प्रयास करते हैं । भारतीय चिन्तकों का मानना है कि हमको ऐसी अर्थरचना विकसित करना चाहिए जिसमें अन्तिम स्वामित्व भगवान के हाथों में रहे । जब मैं यह विषय अर्थशास्त्रियों के सामने रखता हूँ, तो वे कहते है कि यह अव्यावहारिक है और यदि भगवान का स्वामित्व मान भी लिया जाये तो इससे क्या हो जाने वाला है । इस सम्बन्ध में मेरा कहना है कि यही सर्वाधिक व्यावहारिक हैं । यह दृष्टिकोण का विषय है और हम जानते है कि दृष्टिकोण बदल जाने पर व्यक्ति

Scanned with CamScanner

Scanned by CamScanner

का व्यवहार भी बदल जाता है। इसे मैं एक सरल उदाहरण से समझाने का प्रयत्न करूँगा। मान लीजिए, एक व्यक्ति है रमेश, इसकी बर्फी खाने की इच्छा हो गई। तो वह बाजार में गया और एक किलो बर्फी खरीदकर ले आया। जब वह बाजार से घर आ रहा होगा तो उसकी इच्छा होगी कि उसे रास्ते में कोई परिचित न मिले अन्यथा इस बर्फी में से कुछ खामखाह उसे देनी पड़ेगी। यदि रास्ते में उसका मित्र सुरेश दिख जायेगा, तो वह उससे भी बचकर निकलने की कोशिश करेगा। क्योंकि उसे घर जाकर बर्फी खानी है। ज्यादा से ज्यादा इस बर्फी में से वह कुछ अपने परिवार के लोगों को खिला देगा - यही दृष्टिकोण रहेगा। तो जब साधनों पर व्यक्तिगत स्वामित्व रहेगा तो दृष्टिकोण भी यह रहेगा कि मेरे पास जो साधनसम्पदा है, उसका केवल मात्र मैं ही अधिकाधिक उपयोग करूँ।

अब मान लीजिए, कि आप भगवान का प्रसाद खरीदने जाते हैं। उसी दूकान से वही बर्फी खरीदते हैं। अपने पैसे से ही खरीदी है। आप बर्फी का डिब्बा लेकर आ रहे हो और रास्ते में सुरेश मिल गया। पूछा- रमेश क्या ला रहे हो ? आप क्या बोलोगे ? आप यह नहीं कहोगे कि बर्फी ला रहा हूँ। आप कहोगे कि भगवान का प्रसाद ला रहा हूँ। बर्फी है आपकी, पर बोला क्या आपने ? यह भगवान का प्रसाद है। भगवान का स्वामित्व हो गया ना । आपने अपने स्वामित्व का हस्तांतरण कर दिया, क्योंकि आपका दृष्टिकोण बदल गया। आपने साधन-संपदा अपनी नहीं मानी। और फिर उसे भगवान के मन्दिर में जाकर **'त्वदीयैव वस्तु तुभ्यमेव समर्पयेत्'** के भाव से भगवान को समर्पित कर दी। पंडितजी, पुजारीजी उसमें से कुछ हिस्सा ले लेंगे, जो समाज के लिए आवश्यक है। उन्होंने जब वह शेयर लिया तो आपने ऐतराज नहीं किया। यह एक प्रकार का ऐसा कराधान (Taxation) है, जिसको लगाते समय आपने ऐतराज नहीं किया। क्यों नहीं किया आपने ऐतराज ? क्योंकि आपकी वस्तु है ही नहीं। आपका दृष्टिकोण बदल गया। फिर मन्दिर में पुजारीजी द्वारा प्रसाद में से कुछ हिस्सा रखने के बाद आपको अपना हिस्सा उन्होंने दे दिया। उसके सम्बन्ध में भी अब आपका दृष्टिकोण क्या रहेगा ? आपका दृष्टिकोण रहेगा कि मैं इस प्रसाद को ज्यादा से ज्यादा लोगों में बाँटकर खाऊँ। पहले दृष्टिकोण क्या था ? बर्फी का मैं ही ज्यादा से ज्यादा उपभोग

Scanned with CamScanner

Scanned by CamScanner

करूँ। अब इसे भगवान का प्रसाद मान लेने पर दृष्टिकोण क्या हो गया ? अब दृष्टिकोण यह हो गया कि मैं इसका ज्यादा से ज्यादा लोगों में वितरण करके उपभोग करूँ। उस प्रसाद का जरा सा हिस्सा आपने किसी को दिया, उसने खाया, आपने भी उसका जरा सा हिस्सा खाया - पर क्या महसूस किया ? महसूस यह किया कि इस जरा से प्रसाद के सेवन से बड़ा संतोष मिल गया । आखिर हम अर्थशास्त्र में क्या चाहते हैं ? अधिकतम संतुष्टि ही तो चाहते हैं । अर्थशास्त्र का एक प्रमुख सिद्धान्त है - ''अधिकतम संतुष्टि का सिद्धान्त'' (Law of maximum satisfaction) । इस अधिकतम संतुष्टि की यदि कोई गारण्टी दे सकता है, तो वह भारतीय चिन्तन ही दे सकता है और हमने ऐसी गारण्टी दी भी थी ।

अन्त में मैं एक और महत्त्वपूर्ण विषय की चर्चा करना चाहूँगा। आजकल विकास की बड़ी चर्चा चल रही है। क्या है यह विकास (Development) ? पश्चिम के लोगों को यह विकास ही समझ में नहीं आ रहा। विकास को क्या मान लिया उन्होंने ? विकास का उन्होंने माप बताया है - प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि (Increase in per capita income) ! और प्रति व्यक्ति आय को कैसे मापते है वे - तो वे इसे मापते है वस्तुओं व सेवाओं की प्रति व्यक्ति उपलब्धि (Per capita availability of goods and services) के रूप में; अर्थात् एक व्यक्ति के हिस्से में कितनी वस्तुएँ व सेवायें आती है, उसी के हिसाब से उसके विकास के स्तर को मापते है। जिस व्यक्ति या जिस समाज के हिस्से में ज्यादा वस्तुएँ व सेवायें आयेगी, पश्चिम के चिन्तन के हिसाब से वह अधिक विकसित और जिसके पास कम वस्तुएँ व सेवायें होगी, वह कम विकसित कहलायेगा । तो फिर उनके हिसाब से तो गाँधीजी कम विकसित थे और कोई अधिक वस्तुएँ व सेवायें रखने वाला सिनेमा का एक्टर अधिक विकसित था। और इस मापदण्ड से तो भारत के प्राचीन ऋषि-मनीषि भी कम विकसित थे, ऐसा माना जायेगा। इस विषय को समझाने के लिए मैं कई बार मजाक में एक उदाहरण दिया करता हूँ। मान लीजिए, एक व्यक्ति है, अब वह यह साबित करना चाहता है कि उसका विकास हुआ है अथवा वह विकसित है। तो वह सुबह से रात्रि तक कई तरह की वस्तुओं का उपभोग करता रहता है - वस्तुएँ चरता रहता है - सुबह भी खायेगा, दोपहर को भी खायेगा - शाम को भी खायेगा - रात्रि

Scanned with CamScanner

Scanned by CamScanner

को भी खायेगा - जब जाग खुल गई तब खायेगा - इस प्रकार खाता ही रहता है। अब अनाप-शनाप खायेगा तो पेट खराब हो जायेगा, कई तरह की बीमारियाँ लग जायेगी। इन बीमारियों को दूर करने के लिए कई तरह की दवाइयाँ रखेगा। तो कुल मिलाकर उसके पास वस्तुओं व सेवाओं की संख्या (Basket of goods and services) ज्यादा हो जायेगी। उसके पास वस्तुएँ भी ज्यादा हो गई, दवाइयाँ भी ज्यादा हो गई। आधुनिक विकास अर्थशास्त्र के अनुसार यह आदमी ज्यादा विकसित कहलायेगा। एक दूसरा आदमी है जो संयम से रहता है। जरूरत पड़ने पर जो स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है, उतना ही खाता है, तो वह बीमार नहीं पड़ता और इसलिए उसे अपने पास दवाइयाँ रखने की भी जरूरत नहीं पड़ती। इस प्रकार इस व्यक्ति के पास वस्तुएँ भी कम हैं और दवाइयाँ भी कम है; अतः यह कम विकसित कहलायेगा। क्या आपको विकास की ऐसी परिभाषा मान्य है ? आजकल विकास की इस गलत परिभाषा के कारण ही सम्पूर्ण संसार में जिस प्रकार का अर्थशास्त्र चल रहा है, वह है असीमित उपभोग का अर्थशास्त्र। इसी को उपभोक्तावाद (Consumerism) कहा गया है। प्रदूषण का अर्थशास्त्र खड़ा हो गया है। आज की सारी समस्यायें इस गलत चिन्तन तथा गलत तकनीक-तकनोलॉजी के प्रयोग के कारण पैदा हुई है। इसी में से ऊर्जा का संकट खड़ा हो गया है। ऋण का अर्थशास्त्र खड़ा हो गया। दुनियाँ के तमाम देश कर्जदार हैं, या बनते जा रहे हैं। आज अमेरिका तक भी कर्जदार है और वह हमें भी कर्ज के जाल में फँसाता जा रहा है। विकास की इस गलत दिशा व दृष्टि के कारण सम्पूर्ण समाज विश्रृंखलित हो गया है। इसकी तुलना में भारतीय चिंतन में से विकास की एक नई संकल्पना निकलती है; इसे मैंने नाम देने का प्रयत्न किया है, वह है - 'सुमंगलम्'। हम क्या चाहते है ? मंगल सृष्टि चाहते है, मंगल समाज चाहते है, मंगलमय अर्थव्यवस्था चाहते है।

कुल मिलाकर जो चिन्तन उभरकर आता है, वह यह है कि हमें भारतीय चिन्तन के आधार पर एक नई वैकल्पिक सामाजिक-आर्थिक संरचना खड़ी करनी है। यह संरचना कैसी होगी ? इस संरचना के बारे में सूत्र रूप में कहा जा सकता है कि यह होगा **पोषणक्षम अर्थतंत्र** (Nourishing Economy), **धारणक्षम तकनीक** (Sustainable Technology) और **संस्कारक्षम समाज-**

Scanned with CamScanner

Scanned by CamScanner

तंत्र (Well-cultured Social set-up) । यह जो तीसरा पक्ष है, वह पहले के दोनों पक्षों के लिए जरूरी है । जब समाज संस्कारित होगा तभी पोषणक्षम अर्थतंत्र बनेगा और तभी धारणक्षम तकनीक बनेगी । हम और आप जो राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के स्वयंसेवक हैं, वे पूजनीय डा. हेडगेवार की कृपा से संस्कारक्षम समाज बनाने की साधना में लगे हुए हैं । तो सब प्रकार से हिन्दू मनीषियों के चिन्तन के अनुसार वैकल्पिक अर्थरचना देने का काम तब तक पूर्ण नहीं हो सकता जब तक कि संस्कारक्षम समाज न बने । ऐसे समाज निर्माण के काम में ही हम और आप सब लगे हुए है । अतः आज इस काम को और अधिक गति देने की आवश्यकता है ।

• • •

E – समिधा
॥ स्वाध्यायन्मा प्रमदः ॥
स्वाध्याय में प्रमाद निषेध

Scanned with CamScanner

Scanned by CamScanner

द्वितीय भाग

कृति-रूप हिन्दू अर्थ-चिन्तन
(Hindu Economic Thinking in Action)

कल की वार्ता में मैंने हिन्दू अर्थचिन्तन के मूलाधार (Fundamentals of Hindu Economic Thinking) - यह विषय प्रस्तुत करने का प्रयास किया था । साथ ही साथ पश्चिमी अर्थ-चिन्तन के मूलभूत तत्त्वों के साथ उनकी तुलना भी की थी । कल की वार्ता से आपको यह ध्यान में आया होगा कि हमारे अर्थचिन्तन के सिद्धान्त अधिक सटीक हैं, अधिक समग्र हैं एवं अधिक व्यावहारिक हैं । आज की वार्ता में मैं उन मूलभूत तत्त्वों के आधारपर- क्या कभी इस देश में वास्तव में कोई अर्थरचना थी और उनके अनुसार क्या कोई अर्थव्यवहार होता था - इस विषयपर चर्चा करूँगा ।

अगर आज की इस वार्ता को मैं कोई शीर्षक दूँ तो वह होगा 'कृति-रूप हिन्दू अर्थ-चिन्तन' (Hindu Economic Thinking in Action) । जैसे अपने यहाँ पर कृति रूप संघ दर्शन है, यह भी उसी प्रकार होगा । हम जानते है कि संघ का अपना एक दर्शन है और उस दर्शनके आधार पर हमने प्रत्यक्ष रूप से कुछ कार्य खड़े किये है । ऐसा ही हिन्दू अर्थचिन्तन के संदर्भ में है । जिन कुछ मूलभूत तत्त्वों का कल मैंने जिक्र किया था, उनको ध्यान में रखते हुए रोजमर्रा की जो आर्थिक समस्यायें हैं, जो आर्थिक प्रश्न हैं, इस देश के लोगों ने क्या कभी उनके बारे में कोई विचार किया था ? और विचार करके उनके

Scanned with CamScanner
Scanned by CamScanner

क्या कोई व्यावहारिक हल प्रस्तुत किये थे ? आज की वार्ता में मैं इन प्रश्नों के संदर्भ में ही विषय प्रस्तुत करने का प्रयास करूँगा।

अपने सम्पूर्ण शास्त्रों को देखने के बाद ऐसा ध्यान में आता है कि अपने यहाँ अर्थरचना एवं अर्थव्यवहार के बारे में बहुत विस्तार से और बहुत गहराईसे विचार किया गया था। इसलिए उस समय के अर्थतंत्र के सम्पूर्ण चित्र को प्रस्तुत करना तो सम्भव नहीं किन्तु उस चित्र के कुछ ट्रेलर अवश्य ही आपके सामने रखने का प्रयत्न करूँगा। इस ट्रेलर को देखने के बाद आपके मन में पूरी फिल्म देखने-समझने की अवश्य ही जिज्ञासा उत्पन्न होगी, ऐसा मेरा विश्वास है। भारतीय मनीषियों ने आर्थिक प्रश्नों व समस्याओं के बारे में व्यावहारिक धरातल पर जो मार्ग बताये थे, उनकी कुछ मोटी-मोटी झाँकियाँ दिखाने का प्रयत्न करूँगा।

हम सब जानते हैं कि जब हम अर्थशास्त्र एवं अर्थव्यवहार की बात करते हैं, तो लेन-देन की बात जरूर होगी, क्रय-विक्रय की बात जरूर होगी, बाजार जरूर आयेगा, वस्तुओं की खरीद-फरोक्त जरूर आयेगी - यह एक सामान्य बात है। इन विषयों से सम्बन्धित प्रश्न और समस्यायें आज भी हैं और पहले भी थी। इस लेन-देन और क्रय-विक्रय की व्यवस्था के सम्बन्ध में अपने शास्त्रों में बहुत विस्तार से विवेचन मिलता है। लेन-देन दो प्रकार से होता है । एक को हम वस्तु-विनिमय प्रणाली (Barter System) बोलते हैं। इसमें वस्तु के बदले वस्तु का लेन-देन होता है। यह प्रणाली प्रारम्भिक काल में दुनिया के प्रत्येक देश में प्रचलित थी। पर जिसको लेकर सबसे ज्यादा विवाद है, वह यह है कि दुनिया के किस देश में सबसे पहले लेन-देन के माध्यम के रूप में मुद्रा का प्रयोग प्रारम्भ हुआ। मुद्रा का सबसे पहले प्रयोग हमारे यहाँ हुआ है । हमारे वेद, जो दुनिया के सबसे पुराने लिखित दस्तावेज है, उनमें **'हिरण्य पिण्ड'** का उल्लेख मिलता है। 'हिरण्य' सोने को कहते हैं और पिण्ड यानि मुद्रा। इस प्रकार 'हिरण्यपिण्ड' का अर्थ हुआ- सोने की मुद्रा। उस समय के लोग सोने को कूट-पीटकर एक निश्चित वजन का पिण्ड बना देते थे और फिर उसके माध्यम से लेन-देन करते थे। इस प्रकार वेदो में हमें मौद्रिक विनिमय प्रणाली (Monetary Exchange System) के उदाहरण भी मिलते हैं। मुद्रा का इससे भी अधिक सटीक रूप जो हमें वेदों में मिलता है, उसके लिए 'निष्क'

Scanned with CamScanner

Scanned by CamScanner

शब्द का प्रयोग हुआ है। वेदों में अनेक स्थानों पर निष्क का लेन-देन के माध्यम के रूप में प्रयोग मिलता है। उसके आगे चलकर पाणिनी ने और पातंजलि के महाभाष्य ने मुद्रा के अनेक नाम गिनाये हैं। जैसे जिन मुख्य मुद्राओं के नाम पाणिनी और पातंजलि ने गिनाये हैं, उनमें हैं - शतमान, शाण, निष्क और सुवर्ण। इसके अलावा मुद्रा के रूप में जो नाम सबसे ज्यादा प्रचलन में आया, वह था 'कार्षापण'। पाणिनी में भी और पातंजलि में भी, बाद के शास्त्रों में भी और पुरातत्त्व की दृष्टि से भी खुदाई करने पर जो पुराने सिक्के मिले, उनमें कार्षापण नाम का सिक्का सबसे पुराना है। देश के अनेक हिस्सों में पुराने समय के आहत सिक्के (Punchmark Coins) मिले हैं। ये सब इस बात को सिद्ध करती है कि भारत में बहुत प्राचीन काल से ही लेन-देन की दोनों प्रकार की प्रणालियाँ प्रचलित थी। अर्थात् वस्तु-विनिमय प्रणाली भी प्रचलित थी और मौद्रिक विनिमय प्रणाली भी प्रचलित थी।

फिर जब हम लेन-देन या क्रय-विक्रय की बात करते हैं, तो मुख्य प्रश्न कीमत का आता है। किसी भी वस्तु की कीमत हम क्यों दें ? जब हम बाजार में जाते हैं तो वस्तु वैसे ही क्यों नहीं उठा लाये ? हम कह सकते है कि हमको इस वस्तु की जरूरत है, दे दो। जेब में डाले और चले आये। वह बेचने वाला हमसे कीमत क्यों माँगता है ? और खरीदने वाला कीमत देने के लिए क्यों तैयार हो जाता है ? ये ऐसे प्रश्न हैं जो हर समय उठते आये हैं और उनका उत्तर भी दिया जाता रहा है। कोई भी वस्तु कीमत प्राप्त करने की योग्यता कब प्राप्त करती है ? आधुनिक अर्थशास्त्र की भाषा में - जब वस्तु आर्थिक वस्तु (Economic goods) की श्रेणी में आ जाती है, तब वह कीमत प्राप्त करने की योग्यता प्राप्त कर लेती है। भारत के प्राचीन चिन्तकों ने कहा कि जिस वस्तु में तीन विशेषतायें पाई जायेगी, उस वस्तु की कीमत लगेगी। शुक्राचार्य ने शुक्रनीति में बहुत ही स्पष्ट तौर पर ये तीनों विशेषतायें बताई हैं, वे हैं —

(१) **गुणसंश्रयः** यानि वस्तु में उपयोगिता होनी चाहिए। कीमत का सम्बंध वस्तु की उपयोगिता से होता है। वस्तु उपयोगी होगी तो आप कीमत देने के लिए तैयार हो जायेंगे। वस्तु उपयोगी नहीं होगी तो आप कीमत देने के लिए तैयार नहीं होंगे। जिस व्यक्ति के लिए जो वस्तु जितनी उपयोगी होगी, वह उसके लिए उतनी ही अधिक कीमत देने के लिए तैयार हो जायेगा। तो

Scanned with CamScanner

Scanned by CamScanner

पहली बात है - **गुणसंश्रयः** यानि उपयोगिता अथवा तुष्टिगुण (utility) ।

(२) भारतीय मनीषियों के अनुसार वस्तु में जो दूसरा गुण होना चाहिए, वह है **'सुलभासुलभम्'** अर्थात् सीमितता (Scarcity) । जो वस्तु विपुल मात्रा में उपलब्ध है, उस वस्तु की कीमत नहीं होती । जैसे हवा व सूर्य की धूप की कीमत नहीं लगती है । क्योंकि इन वस्तुओं की पूर्ति असीमित मात्रा में है । उसी वस्तु को दुनियां में कीमत लगेगी, जिसकी पूर्ति मांग की तुलना में कम है । अतः उन्होंने कहा सुलभासुलभम् - इसके आधार पर कीमत लगती है ।

(३) तीसरी बात उन्होंने कही **'व्यवहारक्षम'** - वस्तु में क्या गुण होना चाहिए हस्तांतरणीयता (Transferability) । इसे एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को अथवा एक स्थान से दूसरे स्थान को हस्तांतरित Transfer किया जा सके । आप किसी ऐसी वस्तु की कीमत देंगे जो विक्रेता के पास रहे ? आप उस वस्तु के लिए कीमत देने को तैयार हो किन्तु विक्रेता उस वस्तु को आपको Transfer न कर सके ? तो ऐसी वस्तु की क्या कोई कीमत हो सकती है ? नहीं हो सकती । अतः वस्तुमें हस्तांतरणीयता का गुण चाहिए ।

तो इस प्रकार वस्तु में तीन गुण बताये - उपयोगिता, सीमितता और हस्तांतरणीयता । आजकल के अर्थशास्त्री कीमत निर्धारण के लिए जिस वस्तु को कीमत लगती है, उस वस्तु के लिए ये तीनही विशेषतायें बताते हैं । हमारे यहाँ इसका प्रारम्भ से ही विचार किया । फिर एक और विचार किया हमारे यहाँ के लोगों ने - कीमत का निर्धारण कौन करे - Who should fix the prices ? इसके लिए हमारे यहाँ अलग-अलग Institutions रहे । हम सब जानते हैं कि भारत के मनीषि कभी भी अनम्य दृष्टिकोण rigid approach के नहीं रहे । वे तो गतिशील दृष्टिकोण वाले dynamic personal रहे हैं । ऐसा नहीं है कि हम किसी भी नीति के सम्बन्ध में बिल्कुल जड़ (स्थिर) हो गये हों, बस यही चलेगा । प्रयोग किया - एक एजेन्सी बनायी, वह नहीं चली तो दूसरी एजेन्सी बनायी । सबसे पहले जातक कथाओं में - जातक पीरियड में एक Institution का वर्णन मिलता है । जो वस्तुओं की कीमत निर्धारण करता था, उसका नाम मिलता है - **'अग्धकारक'** (Court Valuer), राजा लोग जो चीजें खरीदते थे, तो किस कीमत पर खरीदें ? इसके लिए राजा अपना एक

Scanned with CamScanner

Scanned by CamScanner

अफसर नियुक्त कर देता था, उसका नाम था अग्धकारक। वह सौदागर से बातचीत करता था, वस्तु देखकर वस्तु की जाँच-पड़ताल कर, उसकी कीमत घोषित कर देता था। वह अपनी ओर से यह परामर्श देता था कि यह वस्तु इस कीमत पर खरीदी जा सकती है। राजा उस कीमत पर वस्तु को खरीद लेता था और शेष प्रजा भी उस कीमत के आधार पर ही वस्तु को खरीदती थी। बहुत समय तक यह व्यवस्था ठीक-ठाक चलती रही; किन्तु आगे चलकर इसमें भ्रष्टाचार (Corruption) आ गया। यह जो Court Valuer था, यह भ्रष्ट हो गया और इसने रिश्वत का लेन-देन शुरू कर दिया। जातक कथा में एक 'तण्डुलनालि' नाम की प्रसिद्ध कथा है। बड़ी अच्छी मजेदार कथा आती है। एक बार एक घोड़े का व्यापारी घोड़ा बेचने के लिए आता है। और वह इस अग्धकारक के पास जाकर निवेदन करता है कि मैं राजा के पास गया था कि घोड़ा बेचना चाहता हूँ, कीमत तय करवा दीजिए। पर इस व्यापारी को यह पता नहीं था कि अग्धकारक भ्रष्ट है। उसने उसके घर जाकर Gift — लेन-देन आदि जो कुछ करना चाहिए था, वह नहीं किया। उसने कहा कि अच्छा बच्चू देख लेंगे हम तुमको। दरबार लगा। दरबार में इस अग्धकारक ने कहा कि यह जो घोड़ा आया है, इस घोड़े की कीमत है एक नालि चावल - नालि उस समय एक छोटा सा माप होता था चावल भरने का, उसे आप प्याला (या कटोरा) कह लीजिए - अर्थात् एक कटोरे चावल के बराबर घोड़े का मूल्य। उस बेचारे की हालत खराब हो गई। घोड़े की इतनी कम कीमत घोषित हो गई। अब वह उससे अधिक कीमत पर बेच नहीं सकता। तो फिर उसने घूम फिरकर उस नगर में पूछा कि यह क्या हैं - यह तो कोई समझदार नहीं लगा हमको। तो लोगों ने पूछा - सेवापानी की है Court Valuer की। तो उसने कहा कि क्या यह सेवापानी वाला आदमी है क्या ? तो फिर वह Court Valuer को जाकर मिलता है और कहता है कि जनाब क्या कर दिया यह आपने। वह बोला - पहले क्यों नहीं आ गया तू? तो वह कहता है कि गलती हो गई, पर अब क्या रास्ता है ? तब Court Valuer ने कहा, हाँ रास्ता है।'तुम एक प्रार्थनापत्र डाल दो Court में राजा के पास और उसमें कहो कि मैं इस चावल को कहाँ ले जाऊँगा ? अतः आप इस एक नालि (एक कटोरा) चावल की भी Valuation (मूल्यांकन) करवा दीजिए। तो ऐसा एक रिट पिटिशन डाल दिया उसने। और एक नालि चावल

Scanned with CamScanner

Scanned by CamScanner

का क्या मूल्य होगा ? तो उस अग्रधकारक ने घोषित किया कि एक नालि चावल का मूल्य होगा पाँच गाँवों के क्षेत्र में आनेवाली समूची भूमि के बराबर इसका मूल्य होगा। तो ऐसे वह Institution भ्रष्ट हो गया। तो ध्यान में आया कि इस व्यवस्था को बदला जाना चाहिए। अतः मनु महाराज ने मनुस्मृति में एक नया Institution दिया । और उसका नाम दिया उन्होंने, जो कीमत निर्धारण करेगा उसके लिए शब्दप्रयोग आता है **'पण्यविचक्षणाः'** । एक Price Board बैठेगा - एक व्यक्ति Corrupt हो सकता है, अतः किसी एक को काम नहीं दिया जाना चाहिए। बल्कि A Board of Price Experts होना चाहिए । आज कल Price Boards बनने लगे हैं। इस प्रकार मनु महाराज ने सबसे पहले Price Board की कल्पना की । और इस Price Board में जो Member होंगे उनकी Eligibility क्या होगी ? Who should be appointed as members of the Price Board ? तो मनुस्मृति में भी और अत्यन्त विस्तार से **कात्यायन स्मृति** में उनकी योग्यताओं का वर्णन किया गया है। बहुत सारी योग्यतायें बताई हैं, उनके विस्तार में नहीं जायेंगे। पर जो एक मजेदार विषय है - मैंने कल कहा था कि हमारी सम्पूर्ण रचना धर्मनियंत्रित थी - धर्मनिर्देशित थी - तो उसी के अनुसार कात्यायन स्मृति लिखती है कि जो Price Board का सदस्य नियुक्त किया जाय, वह वस्तुओं के प्रकारों और विभिन्न किस्मों का जानकार तो होना ही चाहिए, पर साथ ही साथ नैतिक मर्यादा में विश्वास रखने वाला धर्मभीरू भी होना चाहिए। यह Eligibility है - सब ईमानदारी से चलेगा। उनको जातक-काल का अनुभव था कि नैतिक मर्यादाओं को जब व्यक्ति छोड़ देता है तो कैसे भ्रष्ट हो जाता है। इसलिए Price Board के सदस्य की नियुक्ति करते समय नैतिक मर्यादाओं में विश्वास रखने वाला धर्मभीरू ऐसा ही व्यक्ति नियुक्त किया जाना चाहिए - यह बात उस 'पण्यविचक्षणाः' नामक Institution के माध्यम से उन्होंने कहा । आगे चलकरके शुक्राचार्य ने कहा कि वे जो सदस्य हों उन्होंने लोकपरम्परा का भी खयाल करना चाहिए। लोकपरम्परा में कुछ चीजों के मूल्य चलते रहते हैं। हम में से जो गाँवों में रहने वाले लोग होंगे उनको जानकारी होगी कि ऐसी बहुत सारी चीजें जो हम दस्तकारों से लेने जाते हैं, उनका मूल्य परम्पराओं से तय होता है। नाई को क्या देना, धोबी को क्या देना आदि परम्पराओं से तय होता है। अतः परम्पराओं का खयाल भी करना चाहिए। तो ऐसा कीमत निर्धारण

Scanned with CamScanner

Scanned by CamScanner

की एजेन्सियों के बारे में अपने को वर्णन मिलता है ।

फिर अगला सवाल उठता है कि कीमत निर्धारण के सिद्धान्त क्या हों ? वस्तुओं की कीमत तय करते समय किन-किन कारकों (Factors) को ध्यान में रखा जाना चाहिए। कौन-कौनसी बातों को ध्यान में रखते हुए वस्तु की कीमत निर्धारित की जानी चाहिए। बड़ा ही विस्तृत वर्णन है। सबसे पहली बात जो लगभग सब शास्त्रों में मिलती है, सब स्मृतियों, कौटिल्य के अर्थशास्त्र और महाभारत में मिलती है, वह यह है कि किसी भी वस्तु की कीमत के निर्धारण के लिए जो सबसे बड़ा आधार माना जाना चाहिए, वह है उत्पादन-लागत (Cost of Production)। मैं ग्राहक पंचायत का कार्यकर्ता हूँ, ऐसा कल मेरे परिचय में बताया गया था। ग्राहक पंचायत के जो अनेक बिन्दु है, उसमें सबसे महत्त्वपूर्ण बिन्दु यह है कि Cost of Production को declare करो। किसान संघ की भी यह माँग है - भारतीय मजदूर संघ की भी यह माँग है। सम्पूर्ण अर्थचिन्तन, जो आजकल हम कर रहे हैं, उस सबकी यह माँग है। सारा भ्रष्टाचार समाप्त हो जायेगा, शोषण समाप्त हो जायेगा यदि उत्पादक अपनी वस्तु की उत्पादन लागत को बता दे। अपने यहाँ के शास्त्रों ने कहा कि कीमत निर्धारित करते समय Cost of Production का ध्यान रखो। विस्तार में जाना नहीं चाहता। आप शास्त्रों को पढ़ेंगे तो आपको आश्चर्य लगेगा कि Cost of Production में किन-किन तत्त्वों को शामिल किया जाना चाहिए, इसका बड़ा विस्तृत वर्णन है।

दूसरी बात, जिसका हमें शास्त्रों में वर्णन मिलता है वह यह है कि कीमतों के उतार-चढ़ाव में माँग का कम या ज्यादा होना बड़ा असर डालती है। माँग ज्यादा हो जाती है, तो कीमत बढ़ जाती है और माँग कम हो जाती है, तो कीमत कम हो जाती है। अब यह केवल Modern Economics (आधुनिक अर्थशास्त्र) ने ही बताया है क्या ? हमारे लोगों को यह सब ध्यान में था। शुक्राचार्य ने इस बारे में स्पष्ट कहा है - ''यथाकामात्पदार्थानामर्घं हीनाधिकं भवेत''। संस्कृत में अर्घ शब्द है कीमत के लिए। जैसे-जैसे वस्तुओं की माँग कम या अधिक होती है, उसी हिसाब से कीमत (अर्घ) कम या ज्यादा होती है। अर्थात् वस्तु की कीमत पर माँग के परिवर्तन का असर पड़ता है।

Scanned with CamScanner

Scanned by CamScanner

कौटिल्य के अर्थशास्त्र ने समझाया है कि क्रेताओं में जब किसी वस्तु को खरीदने की होड़ लग जाती है - If there is competition among the buyers - क्रेताओं के बीच प्रतियोगिता होती है, तो वस्तु की कीमत बढ़ने लगती है। कौटिल्य ने कहा, यह खतरनाक सिग्नल है। क्योंकि जब क्रेताओं के बीच संघर्ष होगा और कीमत बढ़ेगी, तो सम्पन्न क्रेता तो बाजार से सामान खरीद लेगा, पर बेचारा सामान्य आदमी कैसे खरीदेगा ? तो चैक करो इस पर। तो वहाँ शब्द प्रयोग आता है - **"क्रेतुसङ्घर्षे मूल्य वृद्धिः"**। अर्थात् क्रेताओं में संघर्ष के कारण मूल्य वृद्धि होती है तो इसका मतलब है कि माँग का factor कीमत पर असर डालता है। फिर आजकल के अर्थशास्त्र में कीमत निर्धारण का माँग व पूर्ति सिद्धान्त (Demand and Supply Theory) पढ़ाया जाता है । अर्थशास्त्र में पहले कीमत निर्धारण को लेकर बड़ा विवाद चलता था। अर्थशास्त्र में विवाद चलता ही रहता है। इसीलिए तो यह कहावत ही प्रचलित हो गई कि जहाँ छः अर्थशास्त्री होते हैं, वहाँ सात मत होते हैं। तो अर्थशास्त्र में यह विवाद चलता था कि कीमत पर माँग का ज्यादा असर पड़ता है अथवा पूर्ति का अधिक असर पड़ता है। इसके बारे में दो group बन गये । एक ने कहा - माँग का ज्यादा असर पड़ता है, तो दूसरे ने कहा-पूर्ति का ज्यादा असर पड़ता है। हम जानते हैं, कि फसल अच्छी होने पर उत्पादन ज्यादा हो जाता है तो वस्तु की कीमत कम हो जाती है। इसके विपरीत जब किसी वस्तु की पूर्ति कम हो जाती है, तो कीमत बढ़ जाती है। इसी प्रकार जब गर्मी में बर्फ की माँग बढ़ जाती है, तो उसकी कीमत बढ़ जाती है और सर्दी में माँग कम होने पर कीमत कम हो जाती है। इस तरह कुछ अर्थशास्त्रीयों ने कहा - कीमत पर पूर्ति का ज्यादा असर पड़ता है, तो दूसरों ने कहा माँग का ज्यादा असर पड़ता है। तो यह विवाद ऐसा चलता रहा। ऐसी स्थिति में प्रो. मार्शल ने कहा, यह विवाद बन्द करो और समझाया कि कीमत के निर्धारण में माँग और पूर्ति दोनों का प्रभाव पड़ता है। जैसे कैंची के दोनों फलक कागज या कपड़े को काटने के लिए आवश्यक है। हाँ, कभी ऊपर वाला फलक सक्रिय होता है और यदि कैंची को उलटा कर दिया जाय तो नीचेवाला फलक ऊपर चला जाता है और वह सक्रिय हो जाता है। कपड़ा काटते समय कैंची का एक फलक सक्रिय (active) रहता है और दूसरा स्थिर (passive) रहता है। पर कपड़ा

Scanned with CamScanner

Scanned by CamScanner

काटने के लिए फलक दोनों ही चाहिए। ठीक इसी प्रकार कीमत के निर्धारण में भी माँग और पूर्ति दोनों असर डालते हैं। कभी एक factor Passive रहता है तो दूसरा Active हो जाता है। यह केवल मार्शल ने ही नहीं बताया। मार्शल के दादा-परदादाओं से भी बहुत पहले हिन्दुस्तान के मनीषियों ने बता दिया था। शुक्राचार्य ने शुक्रनीति में स्पष्ट रूप से लिखा है कि - **''सुलभासुलभत्वाच्चा- गुणत्वागुणसंश्रयः''**। कीमत निर्धारण में दोनों चीजें लगेगी। सुलभासुलभम् अर्थात् सप्लाई भी लगेगी - वस्तु की पूर्ति कम है कि ज्यादा है। और गुणत्वागुणसंश्रयः - अर्थात utility भी लगेगी - माँग भी लगेगी - माँग कम है या ज्यादा। तो माँग और पूर्ति दोनों मिलकर वस्तु की कीमत का निर्धारण करते हैं - इस बात की जानकारी भारत के मनीषियों को सदियों पहले से थी। फिर एक और बात उन्होंने कही। क्या किसी वस्तु की कीमत सब स्थानों पर समान होगी ? नहीं हो सकती। क्या किसी वस्तु की कीमत सब समयों में समान होगी ? नहीं हो सकती। इसलिए उन्होंने कहा - **''यथा देशं यथा कालं मूल्यं सर्वस्य कल्पयेत्''** (शुक्राचार्य)। उन्होंने बताया कि मूल्य का निर्धारण देश और काल के अनुसार होना चाहिए,। Time and place के अनुसार। यह निश्चित है - इसका उदाहरण देता हूँ। स्थान बदल जाने से वस्तु की कीमत कैसे बदल जाती है ? नदी के किनारे पानी की कोई कीमत नहीं - घड़ा लीजिए डुबो लीजिए - जितना चाहिए उतना ही ले लीजिए - जितना चाहीए पी लीजिए - नदी में उतरिये और स्नान कर लीजिए - वहाँ आपको इसके लिए कोई कीमत अदा नहीं करनी पड़ती। पर वही नदी का पानी नागपुर शहर में लाया जायेगा और जल विभाग जब उसकी सप्लाई आपके घरों में करेगा तो उसका बिल आ जायेगा। पानी वही है, पर स्थान बदल जाने से कीमत बदल गई। इसी तरह पहाड़ पर पत्थर की कोई कीमत नही है, किन्तु जब वही पत्थर नगरों में मकान बनाने के लिए आ जाता है तो उसकी कीमत देनी पड़ती है। तो इस प्रकार स्थान बदल जाने से वस्तु की कीमत बदल गई। इसी प्रकार समय बदल जाने से भी वस्तु की कीमत बदलती है। गर्मी का मौसम है तो ऊन के कपड़ों की, गर्म कपड़ों की कीमत कम है - सर्दी में ऊनी कपड़ों की कीमत बढ़ जायेगी। गर्मी में ठंडे पदार्थों की कीमत ज्यादा हैं - बर्फ की कीमत, ठंडे पेय की कीमत ज्यादा है - पर सर्दी

Scanned with CamScanner

Scanned by CamScanner

में इनकी आप इतनी कीमत देने के लिए तैयार नहीं होंगे। तो स्पष्ट है कि समय बदलने से कीमत बदलती है, स्थान बदलने से कीमत बदलती है।

फिर एक और बात कही भारत के मनीषियों ने। दो तरह की वस्तुएँ होती हैं - कुछ वस्तुएँ ऐसी होती है जो शीघ्र नष्ट हो जाती है, जल्दी खराब हो जाती है। कौटिल्य ने ऐसी वस्तुओं के लिए शब्दप्रयोग किया है - 'अजस्रपण्यानाम्' यानि शीघ्र नष्ट होने वाली वस्तुएँ। ऐसी वस्तु को कम लाभ पर, लाभ न मिले तो बगैर लाभ के, आपकी लागत भी वसूल न होती हो तो लागत से भी कम कीमत पर और यदि कीमत भी न मिले तो मुफ्त दे देनी चाहिए। यह सच है। और इसलिए कौटिल्य ने उसके लिए शब्दप्रयोग किया है - 'अजस्रपण्यानाम्' - शीघ्र नष्ट होनेवाली वस्तुएँ (Perishable Commodities)। कात्यायन ने इनके लिए शब्दप्रयोग किया है - **'सद्यःक्रयविक्रयी'** - अर्थात् जल्दी क्रय-विक्रय की जाने वाली वस्तुएँ। ऐसी वस्तुओं को जल्दी-जल्दी बेच देना चाहिए। जैसे दूध है, फट जायेगा। केला है, सड़ जायेगा। बेच दो जल्दी से। हम देखते हैं, केला बेचने वाला पहले अधिक दाम पर केला बेचता है - फिर धीरे-धीरे कम करता चला जाता है और यदि केला खराब होने वाला है तो कहता है, बाबा उठा ले जाओ बिना कुछ दिये ही, नहीं तो सड़ जाने पर कूड़ा-करकट फेंकने के लिए भी पेमेन्ट करना पड़ेगा। तो इस बात की जानकारी भी हमको थी कि कीमत निर्धारण करते समय किन-किन तत्त्वों को ध्यान में रखना चाहिए।

कीमत निर्धारण के क्षेत्र में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण योगदान हमारे मनीषियों ने जो दिया, वह था 'न्यायपूर्ण अथवा उचित कीमत की अवधारणा' (The notion of just price)। उचित कीमत क्या होगी ? उसके लिए शब्दप्रयोग किया **'धर्म्यअर्घः'**। धर्म के बिना कुछ नहीं चलता हमारे यहाँ। विभिन्न शास्त्रों ने इस अवधारणा का वर्णन किया है। हमारे इन मनीषियों ने उचित कीमत किसको कहा ? आज तक दुनियां का कोई अर्थशास्त्री- कोई अर्थचिन्तक उचित कीमत के बारे में वह दृष्टि नही दे पाया जो **याज्ञवल्क्य** ने याज्ञवल्क्य स्मृति में दी है। उन्होंने कहा - **''अर्घोऽनुग्रहकृत्कार्यः क्रेतुर्विक्रेतुरेव च।''** उचित कीमत का निर्धारण इस प्रकार किया जाना चाहिए जिसमें क्रेता और विक्रेता दोनों के हितों का खयाल किया गया हो।

Scanned with CamScanner

Scanned by CamScanner

यह इस बात का प्रमाण है कि हम समन्वयवादी हैं, समग्र दृष्टिवाले हैं। हम केवल मात्र एक वर्ग के हितों के पोषक नहीं है - वर्गवादी नहीं हैं हम। हमने सम्पूर्ण समाज का हित देखा है। यदि उत्पादक को प्रेरणा नहीं रही तो वस्तु का उत्पादन होगा क्या ? आपने वस्तु की कीमत बहुत कम तय कर दी तो उत्पादक की प्रेरणा कमजोर पड़ जायेगी और वह उत्पादन कम कर देगा। पिछले दिनों जब गन्ने की कीमत काफी कम तय की गई तो किसानों ने गन्ने का उत्पादन कम कर दिया था। दूसरी ओर, यदि आपने कीमत बहुत ऊँची तय कर दी तो बेचारा उपभोक्ता बर्दाश्त नहीं कर सकता, उसके हित का आपने ध्यान नहीं रखा। तो क्या कहा उन्होंने **'अर्घोऽनुग्रह क्रेतुविक्रेतुरेव च'** - कितना बढ़िया कहा उन्होंने - क्रेता और विक्रेता दोनों के हितों को ध्यान में रखते हुए Price Board जो कीमत तय कर दे, बाजार में उस उचित कीमत को लागू किया जाना चाहिए। हाँ, बाजार की कीमत में इस 'उचित कीमत' से थोडा-बहुत परिवर्तन तो हो सकता है किन्तु बहुत ज्यादा परिवर्तन नहीं होना चाहिए। यह भी उन्होंने बताया कि यह परिवर्तन किस सीमा तक हो सकता है। उन्होंने कहा कि बाजार में वास्तव में प्रचलित कीमत में उचित से १२.५ प्रतिशत तक की सीमा के भीतर ही परिवर्तन हो सकता है। अर्थात् दूकानदार भिन्न-भिन्न स्थानों अथवा भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में उचित कीमत की तुलना में १२.५ प्रतिशत तक ही कम या ज्यादा कीमत ले सकते हैं। परन्तु कभी इससे ज्यादा परिवर्तन करना पड़े तो इसका उनको अधिकार नहीं है। ऐसे स्थिति में यह मामला Price Board को भेजा जायेगा। और वे तय करेंगे कि अब बदली हुई परिस्थितियों में उचित कीमत क्या होनी चाहिए। इस प्रकार हमारे यहाँ 'उचित कीमत' एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण एवं अद्वितीय अवधारणा मिलती है।

फिर जब हम बाजार की चर्चा करते हैं, क्रय-विक्रय की चर्चा करते हैं तो यह भी खयाल रखना पड़ता है कि बाजार में ठीक प्रकार की व्यवस्था बनी रहे। किसी का भी शोषण न हो। क्योंकि बाद में चलकर धीरे-धीरे कुछ अव्यवस्थायें निर्माण होना प्रारम्भ हो गई थी। तो इन अव्यवस्थाओं को ठीक करने के लिए आर्थिक प्रशासन Economic Administration) आ गया, वित्तीय प्रशासन (Financial Administration) आ गया। इस आर्थिक

Scanned with CamScanner

Scanned by CamScanner

व वित्तीय प्रशासन की दृष्टि से सबसे ज्यादा विचार दुनिया में सबसे पहले यदि किसी ने किया, तो वह कौटिल्य ने किया। आजकल दुनिया में लोग उपभोक्ता आन्दोलन (Consumer Movement) की बड़ी चर्चा करते है। लोग मानते हैं कि उपभोक्ताओं के शोषण के खिलाफ सबसे पहले दुनियां के लोगों को १९६५ में अमेरिका के राष्ट्रपति कैनेड़ी ने चेताया। यह गलत इतिहास है। दुनियां का ग्राहक संरक्षण का सबसे बड़ा अर्थशास्त्री - अर्थचिन्तक अगर कोई हो गया है तो वह है कौटिल्य। इस विषय के बारे में बहुत विस्तार से वर्णन किया है कौटिल्य ने। आर्थिक प्रशासन तथा बाजार प्रशासन के लिए कौटिल्य के अनुसार राजा ने पाँच प्रकार के अफसर नियुक्त करने चाहिए। तो ये पाँच अफसर कौन थे ? एक था **पण्याध्यक्ष** (Superintendent of Commerce), दूसरा था शुल्काध्यक्ष (Taxation Officer), तीसरा, **संस्थाध्यक्ष** - इसका काम था मिलावट को रोकना, घटिया किस्म की वस्तुओं की बिक्री पर रोक, माँग को नियंत्रित करना तथा गलत माप-तौल का प्रयोग करने वालों को दण्डित करना। चौथा था, **पौतवाध्यक्ष** - इसका मुख्य काम मानक माप व तौल जारी करना था। यह एक प्रकार से आज के Controller of Weights and Measures के समान ही अफसर होता था। और पाँचवा था, **अन्तःपाल** (Custom Officer) याने अपने राज्य के अन्दर और राज्य से बाहर माल को जो आना-जाना होता था, उसपर निगरानी रखने का काम यह करता था। ऐसे पाँच अफसरों की कल्पना कौटिल्य ने अपने यहाँ पर की है। ये सब अफसर मिलकर क्या करेंगे ? तो उन्होंने कहा कि ये कुछ खास बातों पर निगरानी रखेंगे। पहली बात, ग्राहकों को मिलावट व धोखाधड़ी से बचाने की कोशिश करना। कुछ लोगों ने यह भ्रम फैलाया है कि भारत के पुराने ग्रन्थों ने संसार की असारता की बात ही ज्यादा कही है - उन्होंने कहा है कि लंगोटी लगाओ और जंगल में चले जाओ। पर यह गलत है। हमारे ग्रन्थों में तो बड़े विस्तार के साथ लौकिक व्यवहार का वर्णन है। किस-किस चीज में किस-किस चीज की मिलावट दूकानदार कर देते हैं, इसका वर्णन है। सामान दिखाना कौन सा और दे देना कौनसा ऐसे धोखाधडी का वर्णन है। पुराने कपडे को नया कपडा बताकर बेच देना इसका वर्णन है। किसी दूसरे स्थान की वस्तु को

Scanned with CamScanner

Scanned by CamScanner

झूठमूठ ही किसी परिसिद्ध स्थान को बताकर बेच देने का वर्णन है। जैसे बनारसी साड़ी कहकर दूसरी साड़ी बेच देना, नागपुरी संतरे कहकर सोनीपत के संतरे बेच देना, ऐसी सब धोखाधड़ियों का वर्णन है। बाजार में उपभोक्ताओं के साथ होनेवाली इन सब प्रकार की धोखाधड़ियों को उन्होंने पहचाना था और इन्हें रोकने के लिए सख्त कदम उठाने की हिदायत दी थी। उन्होंने कहा कि इन सबको रोका जाना चाहिए और ऐसे काम करने वालों को दण्ड देना चाहिए। इस प्रकार मिलावट व धोखाधड़ी से बचाना यह पहला काम बताया इन अफसरों का। इन अफसरों के लिए दूसरा काम यह बताया गया कि ये उपभोक्ताओं को स्मगलिंग और कालाबाजारी से बचायें। चोरी छिपे माल नहीं बेचा जाना चाहिए। कालाबाजारी नहीं करनी चाहिए। उन्होंने विस्तार से बताया कि किस-किस प्रकार स्मगलिंग और कालाबाजारी हो सकती है और इनपर नियंत्रण के लिए सख्त निर्देश दिये हैं। तीसरा काम उन्होंने बताया **'अस्वामीविक्रय'** को रोकना अर्थात् आपकी वस्तु नहीं है और आप बेच दे तो यह गलत है। आजकल भूमाफिया पनप रहे हैं जगह-जगह पर। जोर-जबर्दस्ती या गलत तरीके से पट्टा बनाकर, यह जमीन मेरी है ऐसा झूठ बोलकर जमीन बेच देते हैं। ऐसी स्थिति उस समय भी दिखाई देने लगी होगी। अतः इस प्रवृत्ति को रोकने की व्यवस्था दी गई। कहा गया कि बेचने वाले को पहले यह सिद्ध करना पड़ेगा कि वही उस वस्तु का मालिक है। यदि किसीने जिस वस्तु का वह मालिक नहीं है फिर भी उस वस्तु को बेच दिया है, तो यह धोखाधडी और इसके खिलाफ दण्ड का बड़ा ही विस्तृत विधान मिलता है हमारे शास्त्रों में। और चौथा काम जो इन अफसरों के लिए बताया गया वह तो बहुत ही गजब का काम है। आजतक इस काम के बारे में किसी अर्थशास्त्र में हमने नही पढ़ा। यह तो भारतीय मनीषियों की अपनी देन है। लगभग सभी प्रमुख स्मृतियों में इस काम के बारे में एक पूरा अध्याय ही लिखा गया है - उसका नाम है **'क्रय-विक्रय अनुशय'**। अर्थात् क्रय-विक्रय के उपरान्त पश्चात्ताप। कुछ स्मृतियों में तो इसे दो अलग-अलग भागों में बाँटा गया है - **''विक्रीयासम्प्रदान''** अर्थात् बेच देने के उपरान्त सामान न देना (Non-delivery after sale) और **''क्रीत्वानुशय''** अर्थात् क्रय करने के बाद पश्चात्ताप। बाजार में जब

Scanned with CamScanner

Scanned by CamScanner

खरीदने वाला वस्तु खरीदता है और बेचने वाला वस्तु बेचता है, तो यह खरीद और बेचने का काम जब पूरा हो जाता है तो कई बार खरीदने वाला सोचता है कि हाय मैं तो लुट गया - पश्चात्ताप होता है क्रेता को वस्तु खरीद लेने के बाद - तो इसके लिए कोई इलाज है आपके पास ? कई बार ऐसा भी होता है कि विक्रेता ने वस्तु बेच दी और बाद में उसे लगा कि अरे यह तो गड़बड़ हो गई। तो विक्रेता को पश्चात्ताप होता है। आपको कोई ऐसी व्यवस्था (System) देनी पड़ेगी कि नही ? देनी पड़ेगी कि यदि खरीद-फरोख्त में किसी जल्दबाजी के कारण, किसी नासमझी के कारण गलत खरीदफरोख्त हो गई है तो ईमानदार व्यवस्था की यह माँग है कि आप उन्हें पश्चाताप में मत छोड़ दीजिए, कोई रास्ता बताइये। तो ऐसा रास्ता बताया है हमारे मनीषियों ने। बेचने के बाद विक्रेता वस्तु की डिलीवरी ना दे क्योंकि भाव बढ़ गये हैं - आप बार-बार उनको चिट्ठियाँ लिख रहे हैं कि भई आपसे सामान खरीदा था, माल भिजवाओ किन्तु विक्रेता डिलीवरी ही न दें। तो ऐसी स्थिति में डिलीवरी न देने पर उन्हें क्या दण्ड देना होगा, इसके बारे में हमारे शास्त्रो में बड़ी ही विस्तृत व्यवस्थायें दी गई हैं। खरीदने वाला वस्तु खरीद लेने के बाद यदि उसे वापिस लौटाना चाहे तो उसे कब तक लौटा सकता है, कितने समय के बाद लौटाने पर उसको वस्तु की कीमत का कितना हर्जाना देना पड़ेगा, वस्तु की जाँच कब और कैसे की जा सकती है - इन सब विषयों के बारे में विस्तृत व्यवस्थायें मिलती है। इस प्रकार वस्तु खरीद लेने और बेचने के बाद भी न तो क्रेता को पश्चाताप रहे और न ही विक्रेता को पश्चाताप रहे, इसके लिए हिन्दुस्तान के स्मृति ग्रन्थों में बहुत विस्तार से वर्णन मिलता है। इन सब बातों से हम कल्पना कर सकते हैं कि भारत के मनीषियों को आर्थिक व्यवहार की कितनी गहरी जानकारी रही होगी। ये सब मैंने प्राचीन भारतीय मनीषियों के द्वारा विनिमय के सम्बन्ध में दिये गये कुछ विचार और व्यवस्थाओं के बारे में बताया।

अब मैं एक दूसरे विषय की चर्चा करना चाहता हूँ। जब हम अर्थतंत्र एवं अर्थव्यवहार की बात करते हैं, तो उसमें उत्पादन का विषय आता है। उत्पादन के लिए उत्पादन के कारक (factors of production) चाहिए। उत्पादन के कारकों में एक महत्त्वपूर्ण कारक है श्रमिक। उत्पादन का कोई भी काम करना

Scanned with CamScanner

Scanned by CamScanner

चाहेंगे तो उसके लिए मजदूर लगेगा। तो मजदूर को भी अपने अपनी मजदूरी के बारे में विचार करना पड़ेगा। मजदूरी के बारे में हमारे यहाँ कोई विचार हुआ है क्या ? तो हुआ है। हमारे मनीषियों ने तीन प्रकार की मजदूरी बताई है —

(१) **कार्यमाना** (Piece Wages) - आपने जितना काम किया है उतनी मजदूरी मिलेगी। जैसे हम दर्जी के पास कमीज सिलाने जाते हैं तो वह कहता है कि इस कमीज की सिलाई इतनी लगेगी। अर्थात् कार्य के अनुसार मजदूरी देनी होती है।

(२) **कालमाना** (Times Wages) - आप किसी मजदूर को लगाते हैं और उसको कहते हैं कि रोजाना की ५० रु. के हिसाब से मजदूरी देंगे। सप्ताह का इतना वेतन देंगे, या महीने का इतना वेतन देंगे, यह सब कालमाना मजदूरी के ही उदाहरण हैं। अर्थात् काम के समय के अनुसार मजदूरी का निर्धारण करना।

(३) **कार्यकालमाना** (Time-cum-Piece Wages or Task Wages)— अर्थात् इतने समय में इतना काम कर दोगे तो इतनी तुमको मजदूरी मिल जायेगी। बहुत विस्तार से उन्होंने इन तीनों प्रकार की मजदूरी के बारे में समझाया है। फिर अगला प्रश्न है कि मजदूरी कितनी दी जाये। इस कितनी को लेकर भी हमारे मनीषियों ने चार प्रकार की मजदूरी बताई है - ''(i) **श्रेष्ठा भृतिः**'' (Superior Wages) - यह उच्चतम या सर्वोत्तम मजदूरी का प्रकार बताया गया है। (ii) **मध्याभृतिः** (Moderate or Normative Wages) - मध्या का अर्थ है बीच की सी मजदूरी। (iii) **सामा भृतिः** (Ordinary Wages)- याने सामान्य मजदूरी। (iv) **हीना भृतिः** (Inferior or Low Wages) - इसकी हमारे शास्त्रकारों ने बड़ी निन्दा की है। यह वह मजदूरी है जिससे मजदूर व उसके परिवार का ठीक से गुजारा भी न चल सके। तो इस प्रकार कितनी मजदूरी दी जायेगी - इसकी मात्रा के अनुसार उपरोक्त चार प्रकार की मजदूरी का वर्णन मिलता है।

पर मुख्य सवाल यह है कि मजदूरी का निर्धारण कैसे करे ? किसको कितनी मजदूरी दी जाये, क्या कोई विचार किया है अपने लोगों ने इसके बारे में ? तो अपने यहाँ इस सम्बन्ध में बड़ा विस्तृत विचार किया है। मजदूरी

Scanned with CamScanner

Scanned by CamScanner

निर्धारण के कई सिद्धान्तों का उल्लेख मिलता है। मजदूरी निर्धारण का सबसे पहला सिद्धान्त मिलता है - 'मजदूरी का जीवन निर्वाह सिद्धान्त' (Theory of living theory of Wages) - किसी मजदूर को कितनी मजदूरी दी जानी चाहिए, इस प्रश्न के उत्तर में कहा गया कि मजदूर और उसके परिवार के लोगों का भरण-पोषण जितनी मजदूरी में हो जाये, उतनी मजदूरी उस मजदूर को दी जानी चाहिए। अगर उससे कम मजदूरी देंगे तो भूखा मरेगा बेचारा। कार्यकुशलता कम हो जायेगी और यह उचित भी नहीं है। इसलिए अपने यहाँ शुक्रनीति में श्लोक आता है - **"अवश्यपोष्यवर्गस्य भरणं भृतिकादभवेत।"** मजदूर, उसके परिवार और उसके आश्रितों का पोषण हो सके इतनी मजदूरी मजदूर को अवश्य दी जानी चाहिए। मजदूरी निर्धारण का जो दूसरा सिद्धान्त हमारे यहाँ मिलता है, वह है मजदूरी की योग्यता और कार्यकुशलता का सिद्धान्त (Ability Theory of Wages)। अलग-अलग व्यक्तियों की अलग-अलग योग्यता रहती है। अतः सबको एकसमान मजदूरी नहीं दी जा सकती। प्रशिक्षित और अप्रशिक्षित को एक जैसी मजदूरी नहीं मिल सकती, कुशल एवं अकुशल को भी समान मजदूरी नहीं दी जा सकती। तो मजदूरी का निर्धारण करते समय योग्यता का भी खयाल करना पड़ेगा, कार्यकुशलता का भी खयाल करना पड़ेगा। इसके लिए मनुस्मृति में कहा गया है कि - **'शक्तिं चावेक्ष्य दाक्ष्यं च भृत्यानां च परिग्रहम्।'** अर्थात् मजदूर की मजदूरी का निर्धारण करते समय शक्ति यानि योग्यता और दक्षता यानि कार्यकुशलता दोनों को ध्यान में रखा जाना चाहिए। मजदूरी निर्धारण में एक तीसरा सिद्धान्त भी पाया जाता है, इसे हम मजदूरी का उत्पादकता सिद्धान्त (Productivity Theory of Wages) कह सकते हैं। कौटिल्य ने मजदूरी तय करते समय उत्पादकता पर ध्यान देने की बात काफी जोरों से कही है। उसने मजदूरी निर्धारण की दृष्टि से **'कर्मानुरुपम्', 'कार्यानुरुपम'** ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है। अर्थात् कर्म के अनुसार, कार्य के अनुसार, उत्पादन के अनुसार मजदूरी दी जानी चाहिए। वस्त्र उद्योग के क्षेत्र में मजदूरी निर्धारण की चर्चा करते हुए कौटिल्य ने कहा है कि सूत कातने वालों की मजदूरी सूत मोटा, मध्यम या बारीक काता गया है और कम या ज्यादा काता गया है - इसे देखकर तय की जानी चाहिए। इस प्रकार कौटिल्य उत्पादन की गुणवत्ता

Scanned with CamScanner

Scanned by CamScanner

(quality) और मात्रा (quantity) दोनों के आधार पर मजदूरी देने का सुझाव देता है। मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति एवं अग्निपुराणमें भी कार्य के अनुसार मजदूरी तय करने की स्पष्ट व्यवस्थायें मिलती हैं। गीता में भी कर्मफल आया है, जितना आप कर्म करेंगे उतना आपको फल प्राप्त होगा। इन सबको मिलाकर **नारदस्मृति** में नारद ने मजदूरी निर्धारण का एक पूर्ण सिद्धान्त (A Complete Theory of Wages) दिया है जो इस प्रकार है - **"शक्तिभक्त्यानुरूपा स्यादेषां कर्माश्रया भृतिः।"** उन्होंने इस श्लोक के माध्यम से समझाया है कि भृति अर्थात् मजदूरी किस पर निर्भर होगी ? तो मजदूरी निर्भर करती है कर्म पर, उत्पादकता पर (Wages depend on Productivity) और उत्पादकता किस पर निर्भर करती है ? तो उत्पादकता के निर्धारण के लिए दो महत्त्वपूर्ण घटक बताये हैं - एक है शक्ति, योग्यता, क्षमता - जिस मजदूर की जितनी क्षमता होगी वह उतना ही उत्पादन करेगा, काम करेगा। पर केवल शक्ति से काम नहीं बनता। अतः उन्होंने दूसरा घटक बताया है भक्ति - यहाँ भक्ति से आशय है समर्पण (devotion)। बहुत शक्ति है एक में, किन्तु काम में मन ही नहीं लगता है, मनोयोग से काम ही नहीं करता है, तो उत्पादकता नहीं आयेगी। इस प्रकार शक्ति और भक्ति दोनों मिलकर मजदूर की उत्पादकता तय करते हैं और उत्पादकता के हिसाब से मजदूरी का निर्धारण होगा - ऐसा मजदूरी निर्धारण के सम्बन्ध में कहा है।

मजदूरी निर्धारण की चर्चा करने के बाद हमारे शास्त्रों में एक और बड़ी ही महत्त्व की बात की ओर निर्देशन किया गया है। उन्होंने मालिकों (Employers) को चेतावनी देते हुए कहा है कि तुमसे कोई गलती न हो जाये। किस बात की गलती ? उन्होंने कहा कि मजदूर को मजदूरी अवश्य देना और समय पर देना - इसमें कोई गलती न हो, अन्यथा इसका बड़ा नुकसान उठाना पड़ेगा। इस सम्बन्ध में शुक्राचार्य का स्पष्ट निर्देश है —

"न कुर्याद् भृतिलोपं तु तथा भृतिविलम्बनम् ॥"

भृति (मजदूरी) का लोप नहीं होना चाहिए। काम करा लिया और मजदूरी का भुगतान ही ना करे - यह नहीं चलेगा - यह अच्छा नहीं है। भुगतान करना पड़ेगा। नहीं तो राजा का डण्डा आ जायेगा। राजा की यह

Scanned with CamScanner

Scanned by CamScanner

जिम्मेवारी है कि जिसने श्रमिक से जो काम कराया है। उसकी मजदूरी का भुगतान होना ही चाहिए। उसी प्रकार मजदूरी के भुगतान में देरी मत कीजिए। एक तारीख को वेतन देना था और आप सात तारीख तक लटका रहे हैं - यह गलत बात है। आपने दैनिक मजदूरी पर रखा है, उसने काम कर लिया और शाम को पाँच बजे घर जाते समय आप कह रहे हो कि मजदूरी कल ले जाना - यह भी गलत बात है। मजदूरी का समय पर भुगतान करना ही चाहिए। शुक्राचार्य के बारे में तो मेरा ऐसा कहना है कि वह दुनियां का सबसे पहला और सबसे बड़ा श्रम-अर्थशास्त्री (Labour Economist) था। उससे बड़ा श्रम अर्थशास्त्री कोई नहीं हुआ। यदि आप शुक्रनीति पढ़ेंगे तो उसमें श्रम-कल्याण की अनेक योजनायें मिलेंगी। हम श्रम कल्याण के बारे में यदि गहराई से कुछ जानना चाहते हैं अथवा श्रम-कल्याण योजनाओं के बारे में कोई दिशानिर्देश प्राप्त करना चाहते हैं, तो शुक्रनीति पढ़ना चाहिए। उसमें लिखा है कि पेन्शन देनी चाहिए, बोनस देना चाहिए, बीमारी के समय छुट्टी (Sick Leave) दी जानी चाहिए, दुर्घटना हो जाने पर मजदूर को मुआवजा मिलना चाहिए। उसके आश्रितों को पेमेन्ट मिलना चाहिए। कई काम-धन्धे ऐसे होते हैं कि उनमें काम करने के कारण मजदूर को कई प्रकार की बीमारियाँ लग जाती है, ऐसे मजदूरों को क्षतिपूर्ति भत्ता दिया जाना चाहिए। ऐसा बहुत विस्तार के साथ श्रम-कल्याण की विभिन्न योजनाओं के बारे में वर्णन मिलता है। भारत के मनीषियों ने श्रम के बारे में एक जो सबसे महत्त्वपूर्ण दृष्टि दी है वह यह है कि उन्होंने श्रम को केवल मात्र बाजार में खरीदी-बेची जानेवाली वस्तु के रूप में नहीं माना। उन्होंने नियोक्ता और श्रमिक (Employer and Employee) के बीच के सम्बन्ध के बारे में एक नई दृष्टि दी है। उन्होंने मालिक और मजदूर दोनों को ही उद्योग परिवार, व्यवसाय परिवार का अंग माना है। भारतीय मजदूर संघ ने उद्योग परिवार की इस संकल्पना को अपनाया है। इसी दृष्टि में से उद्योग या व्यवसाय में श्रम-सहभागिता (Labour Participation) का सिद्धान्त जन्मा है।

अब मैं थोड़ीसी चर्चा पूँजी, ऋण व ब्याज के बारे में करूँगा। हम जानते हैं कि उत्पादन का काम पूँजी के बिना भी नहीं हो सकता। प्रारम्भ में तो हमारे यहाँ ऋण को अच्छा नहीं माना गया था। किन्तु आगे चलकर यह महसूस

Scanned with CamScanner

Scanned by CamScanner

किया गया कि उत्पादन के लिए पूँजी भी एक महत्त्वपूर्ण घटक है। उत्पादन का काम करने के लिए पूँजी उधार लेनी पड़ेगी, ऋण लेना पड़ेगा तो उसके लिए ब्याज भी तय करना पड़ेगा और ऋण वसूल करने के तरीके भी निश्चित करने पड़ेंगे। हमारे शास्त्रों में विशेष कर स्मृति ग्रन्थों में ऋण वसूल करने के पाँच प्रमुख तरीके बताये गये हैं। ये इस प्रकार हैं —

एक, धर्मेण - अर्थात् नैतिक अपील अथवा नैतिक दबाव के द्वारा। उसे समझाओ कि भले आदमी तूने हमसे पैसा लिया है, नैतिकता का तकाजा है कि उसे लौटाओ। उसके भीतर के नैतिक भाव जगाओ।

दूसरा, व्यवहारेण - कानूनी तरीके से न्यायालय आदि के माध्यम से ऋण वसूल करना। कई लोग ऐसे होते हैं जो नैतिक अपील को नहीं मानते। तो ऐसे लोगों के खिलाफ कोर्ट में केस डाल दीजिए। कानून की मदद से ऋण वसूल करने की कोशिश कीजिए।

तीसरा, छलेन - कुशलता से किसी बहाने से ऋण वसूल करना। कई बार कानून व न्यायालय से भी बात नहीं बनती अथवा कोई व्यक्ति कोर्ट के झंझटों में नहीं फँसना चाहता, तो उन्होंने कहा कि कुशलता से अपना पैसा निकाल लो। किसी बहाने से उसकी कोई चीज ले लो। जैसे कहो कि भाई मेरी पत्नी को शादी में जाना है, जरा तुम अपनी पत्नी का गले का हार कुछ समय के लिए हमें दे दो, शादी के बाद लौटा देंगे। हार ले लेने के बाद जब वह माँगने आये तो कहो, बच्चू पहले मेरा पैसा दे जाओ और अपना हार ले जाओ। इस प्रकार से युक्ति से पैसा वसूलना।

चौथा, आचरितेन - भूख हड़ताल करके या धरना देकर बैठ जाना। धरना देकर बैठ जाओ और कहो कि जब तक तुम हमारा पैसा नहीं लौटाओगे तब तक न खायेंगे और न ही खाने देंगे। पहले समय में साहूकार पैसा वसूल करने के लिए इस तरीके का प्रयोग करता भी रहा है।

पाँचवा, बलेन या पीड़नेन - बलपूर्वक, मार-पिटाई करके या जोर-जबर्दस्ती से पैसा वसूल करना। यदि कोई उधार लिया हुआ पैसा अन्य किसी भी तरीके से न दे, तो उसके खिलाफ बल प्रयोग करने का भी उपाय बताया गया। अच्छा, तुम पैसा नहीं देते तो गला पकड़ लेंगे, डण्डे के जोर से पैसा

Scanned with CamScanner

Scanned by CamScanner

वसूल करेंगे। उसका स्कूटर या अन्य कोई सामान छीनकर कहेंगे पैसा दे जाओ और इसे ले जाओ।

इसी प्रकार भारत के मनीषियों ने ब्याज के भी छः प्रकार बताये हैं -

(i) कायिका (Bodify interest) - ऐसा ब्याज जिसका शारीरिक श्रम के द्वारा भुगतान किया जाता है। जैसा किसी ने पैसा उधार लिया किन्तु वह कहता है कि मेरे पास इसका ब्याज चुकाने के लिए नकद पैसा नहीं है। मैं तो आपके यहां इतने समय तक शारीरिक श्रम कर दूँगा और आप मेरे उस शारीरिक श्रम को ही ब्याज मान लेना।

(ii) कालिका (Periodical interest) - आप एक निश्चित अवधि के बाद ब्याज देना तय कर लेते हैं, जैसे हर मास १ या २ प्रतिशत की दर से अथवा हर वर्ष १० या १५ प्रतिशत की दर से ब्याज देना कालिका कहलाता है।

(iii) चक्रवृद्धि (Compound interest) - अर्थात् ब्याज पर ब्याज लगाकर राशि का बढ़ते जाना चक्रवृद्धि ब्याज कहलाता है।

(iv) कारिता (Stipulated interest) - यह ब्याज सामान्य ब्याजदर से काफी ऊँची होती है। इस ब्याज को ऋणी किन्ही कठिन एवं असामान्य परिस्थितियों में ही देना स्वीकार करता हैं। यह हो सकता है कि ब्याज की इतनी ऊँची दर मजबूरी में ही दी जाती रही हो।

(v) शिखावृद्धि (Daily interest or Hair interest) - जैसे बाल रोजाना बढ़ जाते है वैसे ही किसी ऋण के ब्याज का भुगतान यदि रोजाना करना पड़ता है तो उसे शिखावृद्धि कहते हैं। आजकल भी आप देखते होंगे कि गरीब मजदूर कई बार उधार की रकम के बदले रोज ब्याज का भुगतान करते हैं।

(vi) भोगलाभ (Interest by enjoyment) - ऋणदाता ऋणी की जमीन रहन रख लेता है और उस जमीन पर जो कुछ उपज प्राप्त होती है उसे ही ब्याज की रकम मान लेता है अथवा ऋणी का मकान अपने पास रख लेना और उसके किराये को ब्याज के रूप में जमा कर लेना।

ब्याज के सम्बन्ध में भारत के स्मृति ग्रन्थों में एक न्यायपूर्ण (उचित)

Scanned with CamScanner

Scanned by CamScanner

ब्याज (धर्म्यावृद्धिः - Just interest) की अवधारणा मिलती हैं। कितनी ब्याजदर उचित होगी - किस व्यक्ति के लिए किस परिस्थिती में कितनी ब्याज दर रहनी चाहिए - इन सब बातों के सम्बन्ध में बड़े ही विस्तार से वर्णन मिलता है।

धनार्जन एवं धन का वितरण

धन का अर्थ - हमारे यहाँ के मनीषियों ने धन के अर्जन और धन के वितरण के विषय के बारे में बहुतही विस्तार एवं गहराई से विचार किया है। धन का अर्जन कैसे करें और धन का वितरण कैसे करें - यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। किन्तु इस प्रश्न का उत्तर देने से पहले हमें यह समझना होगा कि धन क्या है - अर्थ क्या है ? सोमदेव सूरि ने नीतिवाक्यामृतम् में धन की परिभाषा इस प्रकार दी है - **"सर्वप्रयोजनसिद्धिः सोऽर्थः।"** अर्थात् जो सब प्रकार के प्रयोजनों की सिद्धि कर सकता है अथवा जिसके द्वारा अनेक तरह की वस्तुएं व सेवायें खरीदी जा सकती है, वह धन है।

वेदों में धन के समानार्थक अनेक शब्दों का प्रयोग हुआ है जैसे रयि, अर्थ, धन, द्रव्य, धेनु, द्रविण, वसु आदि। वेदों के महान भाष्यकार यास्क ने निघण्टु में धन के निम्नलिखित अट्ठाईस समानार्थक शब्द दिये हैं और उन सबके अलग-अलग अर्थ बताये हैं - मघम्। रेक्णः। रिक्थम्। वेदः। वरिवः। श्वात्रम्। रत्नम्। रयिः। क्षत्रम्। यगः। मीढुम्। गयः। नृम्णम्। द्युम्नं। तना। बन्धुः। इन्द्रियम्। वसु। रायः। राद्यः। भोजनम्। मेघा। यशः। ब्रह्मम्। द्रविणम्। श्रवः। वृत्रम्। इत्यष्टाविंशतिरेवधननामानि॥ - आज तक दुनियां का कोई भी अर्थशास्त्री धन के इतने पर्यायवाची शब्द नहीं दे पाया।

धन का महत्त्व

साधारणतया लोगों को यह गलतफैमी है कि भारत के मनीषियों ने धन से दूर रहने का ही उपदेश दिया है। वे तो धर्म की बात करते हैं और संसार को असार बताकर रुपये-पैसे को न छूने की सलाह देते हैं। पर यह पूर्णतया

Scanned with CamScanner

Scanned by CamScanner

गलत है। चार पुरुषार्थों (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) में अर्थ को शामिल करना यह सिद्ध करता है कि भारतीय मनीषियों की दृष्टि से जीवन में धन का भी अपना एक महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। वेदों में हमें ऐसी अनेक प्रार्थनायें मिलती हैं जिनमें देवों से धन, धान्य, स्वर्ण, गाय व घोड़े आदि देनें की प्रार्थना की गई है। कौटिल्य ने धन के महत्त्व को समझाते हुए कहा है कि सब इच्छाओं की पूर्ति धन पर ही निर्भर करती है। महाभारत के शान्तिपर्व में तो स्पष्ट रूप से दरिद्रता को पातक कहा गया है (**दरिद्रं पातकं लोके**)। नारदस्मृति में तो स्पष्ट रूप से यह निर्देश दिया गया है कि 'सब प्रकार के कार्य धन पर निर्भर करते हैं, अतः इसे पूरे परिश्रम के साथ अर्जित किया जाना चाहिए' (धनमूलाः क्रियाः सर्वा यत्नस्तस्यार्जने मतः)। तो धन से मुँह नहीं मोड़ा हमने, धनोत्पादन में कोताई नहीं की। बल्कि भारत के विचारकों ने तो विभिन्न माध्यमों से समाज के आम व्यक्ति के मन में धनार्जन करने एवं अधिकाधिक उत्पादन करने की भावना निर्माण की। इसी भावना से प्रेरित होकर भारत के लोगों ने इस भूमि को शस्यश्यामला बनाया, धनसम्पन्न बनाया। भारत तो स्वर्णभूमि था - इसीलिए समूची दुनियां में इसे सोने की चिड़िया कहा जाने लगा था और भारत दुनिया का सबसे सम्पन्न देश था। और यह कोई लम्बा इतिहास नहीं, कुछ शताब्दियों पहले की ही बात है। भारत की इस सम्पन्नता से ललचाकर ही तो विदेशी लोग भारत को लूटने आये तथा अंग्रेज व डच आदि व्यापारी यहाँ व्यापार करने आये।

धनार्जन की आचारसंहिता

इतना तो स्पष्ट है कि भारत ने धनार्जन से मुँह नहीं मोड़ा। परन्तु - यह 'परन्तु' बड़ा महत्त्वपूर्ण है। जिस बात की ओर दुनियां के लोगों ने कोई विशेष ध्यान नहीं दिया, उस ओर भारत के मनीषियों ने ध्यान दिया। हमारे इन मनीषियों ने धनार्जन की आचारसंहिता (Code of Conduct) दी। इस आचारसंहिता की कुछ मुख्य बातें इस प्रकार हैं -

(i) पहली बात उन्होंने यह कही कि धन का अर्जन जरूर करो, किन्तु यह उचित मार्ग से, न्यायपूर्वक, नैतिकता से करो (**धर्मेण धनः**)। उन्होंने कहा कि गलत तरीके से धनार्जन मत करो। यह सामाजिक एवं नैतिक मर्यादाओं

Scanned with CamScanner

Scanned by CamScanner

के भीतर उचित एवं धर्म मार्ग से ही होना चाहिए। यजुर्वेद में कहा गया है - 'सुपथाराये'। हम धन प्राप्त करना चाहते हैं किन्तु सही रास्ते से प्राप्त करना चाहते हैं। मनुस्मृति में भी कहा गया है - 'कर्मभिरगर्हितैः।' अर्थात् अनिन्दनीय कर्मों से धन का अर्जन करना चाहिए। जुनागढ़ में जो स्कन्धगुप्त का शिलालेख मिला है, उसमें लिखा है - 'न्यायार्जने मतः' - राजा ने कहा है कि मेरा अपने प्रजाजनों को यह निर्देश (direction) है कि न्याय मार्ग से ही धन प्राप्त करना चाहिए। मनुस्मृति में तो स्पष्ट रूप से कहा गया है कि - 'सर्वेषामेव शौचानाम अर्थ शौचं परं स्मृतम्' - सब प्रकार की शुद्धियों में सबसे बड़ी शुद्धि कौनसी है, तो वह है अर्थशुद्धि। इसका अर्थ है कि ठीक ढ़ंग से धन कमाना चाहिए। कालाबाजारी से नहीं, घोटाले से नहीं, रिश्वत से नहीं। सबसे ज्यादा प्राथमिकता अर्थशुद्धि को देनी चाहिए। भारतीय मनीषियों की इस दृष्टि को यदि सरल रूप में समझना हो तो महाभारत का वह प्रसंग पढ़ना चाहिए। जब युधिष्ठिर कहता है कि मैं युद्ध करने के लिए तैयार नहीं हूँ। किसके लिए युद्ध करना चाहिए ? राज्य के लिए ? धनसम्पदा के लिए ? नहीं, नहीं, मैं इन चीजों के लिए युद्ध नहीं करूँगा। तब चारों भाई मिलकर युधिष्ठिर को समझा रहे हैं कि भले मानस युद्ध कर। और वे यही समझा रहे हैं कि युद्ध में विजय के बाद हमें यह मिलेगा, वो मिलेगा, अनेक सम्पदायें मिलेंगी - उन सबका उपयोग करना आवश्यक है। और सबसे मजेदार प्रसंग तो यह है कि धनंजय (अर्जुन), धर्मराज (युधिष्ठिर) को धन का महत्त्व समझा रहा है। अर्जुन का नाम धनंजय है, धनंजय का मतलब है धन का मालिक - अर्थपुरुष। किसको समझा रहा है ? धर्मराज को समझा रहा है कि हमको लड़ना है। तो एक प्रकार से धन धर्म को समझा रहा है। परन्तु भारतीय मनीषियों के विचारों की जो खूबी है, वह यह है कि धनंजय को धर्मराज के निर्देशन में काम करना पड़ रहा है। धनंजय काम तो करेगा, धन चाहिए तो सही, पर निर्देशन धर्मराज का रहेगा, धर्म का रहेगा। इस प्रकार पहली आचारसंहिता थी धर्ममार्ग से धनार्जन करने की।

(ii) दूसरी आचारसंहिता पर्यावरण के बारे में है। आज जो पर्यावरण की समस्या खड़ी हो रही है। हम सारे जीव-जन्तुओं को, पेड़-पौधों को नष्ट करके उत्पादन करते जा रहे हैं, और उसे विकास का नाम दे दिया गया। यह गलत

Scanned with CamScanner

Scanned by CamScanner

है। इसलिए हमारे यहाँ मनुस्मृति एवं महाभारत के शान्तिपर्व में स्पष्ट रूप से निर्देश दिया गया कि - **"अद्रोहेण भूतानामल्पद्रोहेण वा पुनः।"** अर्थात् व्यक्ति को जीविकोपार्जन के लिए ऐसे माध्यम को ही अपनाना चाहिए जो भूत-प्राणियों को बिलकुल भी कष्ट न देने वाला हो अथवा कम से कम कष्ट देने वाला हो। इस प्रकार भारत के मनीषियों ने कहा कि धन का अर्जन तो करो, किन्तु यह ध्यान रखो कि भूत-प्राणियों को कष्ट न पहुंचे, वनस्पतियों को कोई तकलीफ न हो। इसका अर्थ स्पष्ट है कि हमें उत्पादन की ऐसी तकनोलाजी का प्रयोग करना चाहिए जो पर्यावरण-पोषक हो और समाज में पर्यावरण का संतुलन बनाये रखे।

(iii) कुछ लोग पैसे के पीछे इतना पड़े रहते हैं कि शरीर का ही ध्यान नहीं रखते, बीमार रहते हैं, फिर भी दिन-रात काम करते रहते हैं। न शरीर को आराम और ना ही मन-मस्तिष्क को आराम। अरे ! ऐसे पैसे को चाटोगे क्या ? उचित है क्या ऐसे पैसा कमाना ? तो हमारे यहाँ तीसरी बात मनुस्मृति में इस प्रकार बताई गई - **"अक्लेशेन शरीरस्य कुर्वीत धनसंचयम्।"** मनु ने कहा कि धनार्जन का काम अपने शरीर एवं मन-मस्तिष्क को बहुत अधिक पीड़ा पहुँचाकर नहीं करना चाहिए। इसका अर्थ है कि काम का समय एवं स्वरूप ऐसा होना चाहिए जिससे न तो शारीरिक स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़े और न ही मानसिक तनाव उत्पन्न हो।

(iv) मनुस्मृति ने धनार्जन की आचारसंहिता का एक और महत्त्वपूर्ण एवं अद्वितीय सूत्र बताया है। उसके अनुसार व्यक्ति को धनार्जन के ऐसे उपायों से दूर रहना चाहिए जिससे ज्ञानार्जन एवं स्वाध्याय के काम में बाधा पड़े। **"सर्वान्परित्यजेदर्थान्स्वाध्यायस्य विरोधिनः।"**

(v) हमारे शास्त्रों में इस बात पर भी काफी जोर दिया गया है कि अपनी पारिवारिक, सामाजिक एवं धार्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए व्यक्ति को अपने स्वयं के प्रयत्न एवं परिश्रम से ही धनार्जन करना चाहिए। अर्थात् जहाँ तक सम्भव हो उसे अपने निर्वाह के लिए दूसरों पर निर्भर नहीं रहना चाहिए। यह एक प्रकार से विदेशी निर्भरता एवं विदेशी ऋण से बचे रहकर स्वावलम्बी अर्थतंत्र विकसित करने की ओर संकेत करता है।

Scanned with CamScanner

Scanned by CamScanner

धनार्जन की इस आचारसंहिता में दोनों बातों की ओर समुचित ध्यान दिया गया है कि जहाँ अर्थार्जन की प्रवृत्ति व प्रेरणा मन्द न पड़ने पाये, वहाँ वह अनियंत्रित व उच्छृंखल बनकर समाज के लिए अभिशाप भी न बन जाये।

न्यायपूर्ण वितरण व्यवस्था

साम्यवादी एवं समाजवादी लोग यह कहते हैं कि दुनियाँ को न्यायपूर्ण वितरण (Distributive Justice) का सिद्धान्त सबसे पहले हमने सिखाया। किन्तु यह गलत है। दुनियाँ में न्यायपूर्ण वितरण का सिद्धान्त यदि सबसे पहले किसी ने दिया तो वह हिन्दुस्तान के मनीषियों ने दिया। भारत के मनीषि एक ऐसी सामाजिक-आर्थिक संरचना में विश्वास करते थे, जिसमें मनुष्य के परिवार के जीवन-निर्वाह अथवा न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति की गारण्टी हो। उनका मानना था कि कोई भी कार्य करने के लिए शरीर का रक्षण एवं पोषण आवश्यक है (**शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्**)। अतः जीवन-निर्वाह के लिए प्रत्येक व्यक्ति को भोजन, वस्त्र और मकान जैसी न्यूनतम वस्तुएँ अवश्य मिलनी चाहिए। इन न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वेदों में हमें अनेक प्रार्थनायें मिलती हैं। समाज में साधन-सामग्रियों के समुचित एवं न्यायपूर्ण वितरण की दृष्टि से भारतीय मनीषियों ने दो प्रकार की व्यवस्थायें बनाने की बात कही है - एक नैतिक व्यवस्था (Moral Order) और दूसरी कानूनी व्यवस्था (Legal Order)। जब व्यक्ति की नैतिक, धार्मिक,मानवीय एवं दैवीय भावनाओं को जगाकर अपनी आवश्यकता से अधिक सम्पत्ति को समाज हित के लिए समर्पित कर देने की प्रेरणा जगाई जाती है तो उसे वितरणकी नैतिक व्यवस्था कहा जाता है। यह एक प्रकार से ममता से समता लाने का प्रयास है। हमारे यहाँ इसी व्यवस्था को व्यवहार में लाने पर अधिक जोर दिया जाता रहा है। इस दृष्टि से भारतीय जीवन-व्यवस्था में दो बातों को मुख्य रूप से शामिल किया गया है - **इष्ट और पूर्त**। इष्ट का अर्थ यज्ञ, दान-दक्षिणा आदि से है। यदि हम भारतीय जीवन को गहराई से देखेंगे तो पायेंगे कि इसमें विभिन्न प्रकार के यज्ञों तथा विभिन्न अवसरों पर दान-दक्षिणा करने पर बहुत

Scanned with CamScanner

Scanned by CamScanner

जोर दिया गया है। ये ऐसे माध्यम हैं जिनके द्वारा अपने आप ही समाज में साधन-सम्पदा का वितरण होता है। इसी प्रकार जनकल्याण के लिए किये जानेवाले विभिन्न रचनात्मक कार्यों को पूर्त्त कहा जाता है, जैसे कुएँ, तालाब, बावड़ी, नहर, प्याऊ, कैसे लाया जाता था इसे व्यवहार में ? तो हमारे मनीषियों ने हमारे जीवन की दिनचर्या ही ऐसी बना दी थी कि उसके माध्यम से अपने आप ही समानता आती रहती थी। दिनचर्या में क्या बातें डाली गयी थी ? इसमें उन्होंने कुछ संकल्पनायें डालीं। इस दृष्टि से दो महत्त्वपूर्ण संकल्पनायें थीं - इष्ट और पूर्त्त। किसको कहते हैं इष्ट ? यज्ञ, दान-दक्षिणा आदि इसका नाम उन्होंने इष्ट रखा। यज्ञ क्या है ? यह न्यायपूर्ण वितरण (distributive justice) की प्रणाली है। यदि आप वेदों में यज्ञ का वर्णन पढ़ेंगे तो क्या पायेंगे ? उसमें आप पायेंगे कि जब यज्ञ होता है तो यज्ञकर्ता देवताओं को अपने यहां बुलाता है। इन्द्र तुम आओ, वरुण तुम आओ, अमुक-अमुक देवता तुम आओ आदि-आदि। और क्या कहते हैं - आते समय खाली हाथ मत आना। अपने साथ अन्न लाना, सोना-चांदी लाना, अच्छी-अच्छी दूध देने वाली गायें लाना। तो इस प्रकार हमने समाज के सब सम्पन्न व्यक्तियों से विभिन्न प्रकार की सामग्री इकट्ठा कर ली और फिर 'इदं न मम' कहकर यज्ञ में उसे अर्पित कर दिया। वह यज्ञ का प्रसाद हो गया और फिर उसका सबमें वितरण कर दिया। यह सब न्यायपूर्ण वितरण ही तो है। हमें अनेक राजाओं के वर्णन मिलते हैं कि उन्होंने यज्ञ में अपनी सारी सम्पत्ति अर्पित कर दी और वे खाली हाथ हो गये, उनके पास केवल मिट्टी के पात्र ही रह गये। यह सब क्या था ? समाज में सम्पत्ति के वितरण का प्रकार ही तो था। तो इस प्रकार यज्ञ यहाँ न्यायपूर्ण वितरण का तरीका (Device for distributive Justice) था। इसी प्रकार दान-दक्षिणा भी वितरण के ही तरीके थे। यही कारण है कि भारतीय जीवन-रचना में विभिन्न प्रकार के यज्ञ तथा विभिन्न अवसरों पर दान-दक्षिणा करने पर बहुत जोर दिया जाता रहा है। ये ऐसे माध्यम हैं जिनके द्वारा समाज में अपने आप ही सहज रीति से साधन-सम्पदा का वितरण होता रहता है। फिर हमारे यहाँ 'पूर्त्त' शब्द आता है - यह एक तकनीकी शब्द है। पूर्त्त कहते हैं जनकल्याण के कार्यों (Social Welfare

Scanned with CamScanner

Scanned by CamScanner

Activities) को। जैसे कुंए, तालाब, बावड़ी, नहर, प्याऊ, पशुओं के पानी पीने का स्थान, गौशाला, धर्मशाला, निःशुल्क चिकित्सालय, निःशुल्क पाठशालायें, बाग-बगीचे, पेड़ लगाना आदि। इन सब कामों के माध्यम से भी धनवानों की सम्पत्ति अपने आप ही समाज के काम में लगती रहती थी और वितरण में समानता आती रहती थी। भारतीय चिन्तन में हमेशा इस बात पर जोर दिया गया है कि व्यक्ति पदार्थों का अकेला ही उपयोग न करे बल्कि समाज के अन्य व्यक्तियों में बाँटकर ही उनका उपभोग करे। जो अन्यों के साथ न बाँटकर अकेला ही उपयोग करता है, ऐसे व्यक्ति की निन्दा की गई है और उसे पापी कहा गया है। ऋग्वेद कहता है कि 'केवलाघो भवति केवलादि' (जो अकेला उपभोग करता है, वह पापी है)। आगे चलकर गीता में भी इसी बात का समर्थन किया गया है - 'भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्' (जो केवल अपने लिए उपभोग-सामग्री जुटाता है वह पाप का ही उपभोग करता है)। इसीलिए महाभारत के शान्तिपर्व में कहा गया है कि धन का उपभोग बाँटकर करना चाहिए (संविज्य च भोक्तव्यं धनं)। अथर्ववेद में तो स्पष्ट निर्देश है कि सौ हाथों से कमाओ और हजार हाथों से उसका वितरण कर दो (शतहस्त समाहर सहस्र हस्त संकिर)। हमारे शास्त्रों में गृहस्थ के लिए दो प्रकार का भोजन ही उत्तम बताया गया है - एक है अमृत अर्थात् यज्ञ-शेष और दूसरा है विघस अर्थात् दूसरे सब आश्रित लोगों द्वारा भोजन कर चुकने के बाद शेष बचा अन्न। भारत के लोग तो हमेशा ही समता के आकांक्षी रहे हैं। इसीलिए तो हमें यजुर्वेद में 'समानी प्रपा सहवोऽन्नभागः' (हमारे पानी पीने के स्थान और अन्न मात्र समान हो), अथर्ववेदमें सहभक्षाः स्याम (हम साथ-साथ भोजन करने वाले रहें) और तैत्तिरीय उपनिषद् में "ॐ सहनाववतु सहनौ भुनक्तु" जैसी प्रार्थनायें मिलती हैं। विभिन्न स्मृतियाँ एवं अन्य शास्त्रों में धन के विभिन्न कामों में वितरण की दृष्टि से बहुत विस्तार से वर्णन मिलता है। श्रीमद् भागवत् में बताया गया है कि वही व्यक्ति प्रसन्नता अथवा अधिकतम संतुष्टि प्राप्त कर सकता है, जो अपने धन का वितरण मुख्य रूप से पाँच भागों में कर देता है - धर्म (जनकल्याण के कामों में), यश (प्रसिद्धि देनेवाले कामों में), अर्थ (उत्पादन व निवेश के कामों में), काम (उपभोग-

Scanned with CamScanner

Scanned by CamScanner

पदार्थों के सेवन में) और स्वजन (अपने परिवार एवं मित्रों के कामों में) के लिए ।

''धर्माय यशसेऽर्थाय कामाय स्वजनाय च ।
पञ्चधा विभजन्वित्तमिहामुत्र च मोदते ॥''

इस प्रकार हमारे यहाँ अर्जित सम्पत्ति एवं उपभोग के साधनों को अपने तक ही सीमित न रखकर समाज में अपनी ही इच्छा से वितरित कर देने पर जोर रहा है ।

यदि कोई व्यक्ति नैतिक नियमों एवं मर्यादाओं का पालन न करे और सम्पत्ति का आवश्यकता से अधिक अपने पास ही संचय करता चला जावे तो ऐसे अपात्र एवं असाधु व्यक्ति से कानूनी डण्डे के जोर से सम्पत्ति लेकर समाज में वितरित कर देनी चाहिए । यह काम राजा अथवा सरकार को करना चाहिए और इस दृष्टि से कानून एवं दण्डव्यवस्था बनायी जानी चाहिए । वेदों में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि यदि कोई धनवान व्यक्ति समझाने के बावजूद भी अपनी सम्पत्ति का वितरण समाज में न करे, तो उसके हाथ-पैर बाँधकर उसे अंधेरी कोठरी (अर्थात् जेल) में बन्द कर देना चाहिए । मनुस्मृति, महाभारत, शुक्रनीति आदि सभी में नैतिक प्रेरणा से समाजकार्यों में धन न लगाने वाले धनवान किन्तु कंजूस व्यक्ति से धन लेकर समाज में वितरित करने के स्पष्ट निर्देश दिये गये है ।

इस प्रकार भारतीय मनीषियों ने न्यायपूर्ण वितरण की दृष्टि से नैतिक एवं वैधानिक दोनों प्रकार की व्यवस्थायें दी थी । और इन दोनों व्यवस्थाओं के सम्मीलित प्रयास से ही समाज में असमानता घटाकर समानता लाई जाती थी ।

इस प्रकार कुल मिलाकर प्राचीन भारत में सामाजिक-आर्थिक रचना का एक बहुत अच्छा चित्र था । किन्तु अब आज की परिस्थिति में हमें क्या करना है, इसका विचार होना चाहिए । आज जो दुरावस्था निर्माण हो गई है, उससे हम कैसे बाहर निकलें, इसके लिए प्रयास होना चाहिए । इस दृष्टि से **हमें युग के अनुरूप नई व्यवस्थायें बनानी होगी । ऐसी व्यवस्थायें खड़ी करने के लिए तीन बातें लगेगी - आत्मविश्वास, राष्ट्रदेवता के प्रति भक्ति भावना**

Scanned with CamScanner

Scanned by CamScanner

और नैतिक नेतृत्त्व। जैसा कि प्रसिद्ध चिन्तक प्रो. गुनार मिर्डल ने कहा था कि 'भारत की समस्याओं का हल विदेशी ऋण और विदेशी पूँजी नहीं है' बल्कि इन समस्याओं के समाधान के लिए तो एक नैतिक नेतृत्व की शक्ति खड़ी होनी चाहिए। राष्ट्र के प्रति भक्ति भावना से ओतप्रोत आत्मविश्वासी नैतिक नेतृत्व ही भारत के शाश्वत जीवन मूल्यों के अधिष्ठान पर युगानुरूप नई सामाजिक-आर्थिक रचना का निर्माण कर सकेगा।

आज देश और सम्पूर्ण संसार में जो परिस्थितियाँ उत्पन्न हो रही हैं और घटनाचक्र चल रहे हैं, उन सबसे ऐसा लगता है कि भारत में शीघ्र ही एक ऐसी नई वैकल्पिक सामाजिक-आर्थिक संरचना का उदय होगा जो न केवल भारत बल्कि सम्पूर्ण संसार का मंगल कर सकेगी।

★

Scanned with CamScanner

Scanned by CamScanner

Scanned with CamScanner

Scanned by CamScanner

डा. बजरंगलाल गुप्त
एम्. ए. पीएच. डी.
सोनीपत (हरियाणा)

- श्रद्धानन्द महाविद्यालय, दिल्ली में अर्थशास्त्र विभाग में रीडर.
- गत ३३ वर्षों से अर्थशास्त्र का अध्यापन कार्य.
- Value and Distribution System in Ancient India' इस विषय पर शोध प्रबंध,
  GIAN Publishing House, दिल्ली द्वारा प्रकाशित.
- 'भारत का आर्थिक इतिहास',
  हरियाणा साहित्य अकादमी, चंदीगढ़ द्वारा प्रकाशित.
- विश्वविद्यालय के लिये अर्थशास्त्र विषय पर अनेक पुस्तके प्रकाशित.
- म. दयानंद युनिव्हर्सिटी, अजमेर के अभ्यास-मंडल सदस्य.
- रा. स्व. संघ के हरियाणा प्रांत-कार्यवाह.
- अ. भा. ग्राहक पंचायत के राष्ट्रीय अध्यक्ष.

Scanned with CamScanner

Scanned by CamScanner